।। ॐ श्री विश्वेश्वराय नमः।।   ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।   ॐ श्री चन्द्रमोहन सद्गुरुवे नमः

सद्गुरुदेव

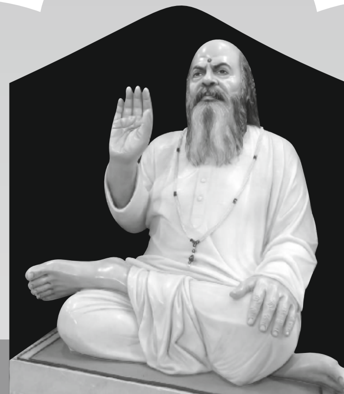

यौगिक प्रश्नोत्तरी

भाग-2

योगयोगेश्वर अनन्तविभूषित सद्गुरुदेव
योगीराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज के
स्वहस्त लिखित विशेषलेख
यौगिक प्रश्नोत्तरी एवं योगेश्वर चरित्रमाला

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

वृहस्पतिवार का दिन था, सत्संग बराबर चल रहा था। योगाचार्य तपोनिधि की शिष्य मंडली सामने बैठी थी। श्री योगाचार्य जी ने अपनी शिष्य मंडली के हितार्थ उपदेश आरम्भ किया। और कहा कि बेटा! देखो 'यस्मिन ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति ऐषां योग विद्या'

अर्थात् जिसके जान लेने पर सभी कुछ जान जाया करता है वह हमारी योगविद्या है। एकमात्र योगी के मन में ही सर्व ज्ञातृत्व शक्ति रहती है। संसार का कोई दूसरा प्राणी सर्वज्ञाता नहीं हो सकता।

प्रश्न : हे गुरुदेव! क्या संसार में कोई ऐसा व्यक्ति हुआ है जिसको जन्म जन्मान्तर की कथायें याद हों?

उत्तर : हे वत्स! हां इस प्रकार के बहुत योगी हुये हैं जिनको अपने योगध्यान के द्वारा जन्म जन्मान्तर की बीती हुई कथाओं का स्वयं स्मरण हुआ करता है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस प्रकार के कौन-कौन योगी हुये हैं जो अपने जन्म जन्मान्तर के इतिहास को भली प्रकार से जानते हैं?

उत्तर : हे वत्स! इस प्रकार के तो अनेकों सिद्धयोगीराज हुये हैं, और अब भी हैं, किन्तु हर व्यक्ति उनको अपनी चर्म दृष्टि से पहचान नहीं सकता है। उनको पहचानने के लिए दिव्यदृष्टि के बिना तो मनुष्य अंधा ही रहता है। देखो पुत्र! यह तुम्हारे जैसा प्रश्न एक बार अर्जुन ने भी भगवान श्रीकृष्ण से किया था। वही सब प्रकरण हम तुम्हें सुनाते हैं। श्रीकृष्णचन्द्र से बढ़कर आज संसार में क्या प्यारी वस्तु हो सकती है। वे मेरे तुम्हारे एवं प्राणीमात्र के हृदय हैं। उन्हीं जगदात्मा ने अर्जुन को योग का उपदेश दिया। यौगिक कोर्स समझाते हुये श्रीकृष्ण ने निम्न प्रकार से योग सिद्धान्तों को समझाया।

'इन्द्रियाणि पराण्याहु-रिन्द्रियेभ्य: परं मन:।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धे: परतस्तु स:।
एवं बुद्धे: परं बुद्‌यध संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।

अर्थात् योगध्यान परायण व्यक्ति के लिए इन्द्रियां सूक्ष्म हैं एवं इन्द्रियों से मन सूक्ष्म हैं। और मन से बुद्धि सूक्ष्म है। इस प्रकार से यौगिक कोर्स के क्रमानुसार इन्द्रियें, मन, बुद्धि एवं मूल प्रकृति के साक्षात् पर्यन्त पहुँचकर योगी आत्मसाक्षात्कार कर अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। भगवान ने कहा अर्जुन बुद्धि से आगे अपने आत्मसाक्षात्कार करके अर्थात् आत्मा से आत्मा को पहचान करके न काबू में आने वाले कामरूप शत्रु को मारो। ये सब उपदेश करके अर्जुन को श्रीकृष्ण ने कहा—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदु:।
स कालेनेह महता योगो नष्ट: परंतप।।
स एवायं मया तेऽद्य योग: प्रोक्त: पुरातन:।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।

अर्थात् हे अर्जुन यह योगसाधनाक्रम जिसका मैंने तुम्हें उपदेश किया उसी का उपदेश मैंने ही विवस्वानु को किया था और विवस्वानु ने मनु को तथा मनु ने इक्ष्वाकु को बतलाया। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षि लोग जानते रहे। किन्तु समय बहुत लम्बा हो जाने के कारण यह योग नष्ट भ्रष्ट हो गया। हे अर्जुन! वही पुरातन योग आज मैंने तुमसे कहा है। क्योंकि तुम मेरे भक्त एवं परममित्र हो इसलिये इस योग रहस्य का उपदेश मैंने तुम्हें किया है। भगवान के इस प्रकार उपदेश कर देने के बाद अर्जुन के मन में बहुत बड़ी शंका हुई और उसने अपने परम प्रियतम श्रीकृष्ण से कहा कि हे श्रीकृष्ण! आप मुझे यह बात समझायें कि-

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वत:।
कथमेद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।

अर्थात् आपका जन्म तो अब हुआ है और विवस्वानु का जन्म बहुत पहले हुआ था, मैं इस बात को कैसे जानूँ कि यह योग आपने पहले भी कहा था। अर्जुन के इस प्रश्न को सुनकर के अखिल आत्मा श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि हे अर्जुन! देखो हमारी बात को सुनो—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामी श्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

अर्थात् हे अर्जुन मेरे और तुम्हारे भी बहुत जन्म हो चुके हैं किन्तु उन सबको मैं जानता हूँ तुम नहीं जानते हो। यद्यपि मैं अज, अव्यात्मा एवं प्राणिमात्र का ईश्वर हूँ एवं जन्म-मरण से परे हूँ। किन्तु फिर भी प्राणिमात्र के हित को सामने रखकर अपनी प्रकृति का सहारा लेकर युग-युग में प्रगट होता हूँ। जब-जब संसार में धर्म की ग्लानि होती है एवं अधर्म बढ़ने लगता है तब मैं धर्म के अभ्युत्थान के लिए एवं साधुओं के परित्राण के लिए, दुष्कर्मों के नाश के लिए और धर्म की पूर्ण रूप से स्थापना के लिए मैं जन्म धारण करता हूँ। उपरोक्त उपाख्यान योगाचार्य तपोनिधि जी ने जब अपने शिष्यों को सुनाया तब योग जिज्ञासु ब्रह्मचारी कपिलदेव ने कहा कि हे प्रभो! श्रीकृष्ण तो जगत के ईश्वर हैं। वह कोई साधन सिद्ध व्यक्ति तो हैं नहीं। वे तो सर्वसमर्थ एवं प्राणिमात्र के ईश्वर हैं। यदि श्रीकृष्ण अपने जन्म-जन्मात्तरों के इतिहास को जानें और कहें तो कोई विशेष महत्व की बात नहीं। मुझे तो आप कृपा करके किसी ऋषि, मुनि की बात बतलाइये।

उत्तर : हे पुत्र! देखो योगदर्शन के व्यास भाष्य में एक पूर्वकथा का उपाख्यान दिया है उसको हम तुम्हें तुम्हारे भले के लिए व्यास भाष्य की पंक्तियों में दिखलाते हैं। उसके बाद उसका भावार्थ बतला देंगे। देखो वह उपाख्यान इस प्रकार है—

अत्रेदमाख्यान श्रूयते- भगवतो जैगीषव्यस्य संस्कारसाक्षात्कारणाद् दशसु महासर्गेषु जन्म-परिणामक्रममनुपश्यपतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभवद् अथ भगवानावट्यस्तनुधरस्तमुवाच- दशसु महा-सर्गेषु भवत्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्मेन त्वया नर कतिर्य्यग्गर्भसम्भवं दुखं सम्पश्यता देव मनुष्येषु पुनः पुनरूत्पद्यमानेन सुख दुःखयोः किमधिकसुप-लब्धमिति? भगवन्टमावटयं जैगीषव्य उवाचदशसु महा सर्गेषु भवत्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्वेन मया नरकतिर्य्यग्भवं दुःख सम्पश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन यत्किञ्चिदनुभूतं तत्सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमि, भगवानावट्य उवाच यदिदमायुष्मतः प्रधानवशित्वमनुत्तमं च सन्तोषसुखं किमदमपि दुःखपक्षे निक्षिप्तमिति? भगवान जैगीषव्य उवाच- विषयसुखायेक्षयैवेदमनुत्तमं सन्तोषसुखमुक्तं, कैवल्यापेक्षया दुःखमेव बुद्धि सत्वस्यायं धर्मस्त्रिगुणः त्रिगुणश्च प्रत्ययो हेयपक्षयेन्यस्त इति दुःख स्वरूपतृष्णान्तुस्तृष्णादुःखसन्तानापगमात्तुं प्रसन्नम-बाधं सर्वानुकूलं सुखमिदमुक्तमिति।।

अर्थात् यह कथा इस प्रकार सुनी जाती है। भगवान जैगीषव्य को संस्कारों के साक्षात्कार करने से दस महासर्गों के अन्दर होने वाले जन्मों के परिणामक्र को देखते हुये, विवेक ज्ञान पैदा हुआ। वह विवेक ज्ञान पैदा हो जाने के बाद जैगीषव्य के गुरुदेव भगवान आवट्य शरीर धारण करके कहने लगे कि हे जैगीषव्य दस महासर्गों के अन्दर बार-बार जन्म धारण करने पर अपनी बुद्धि और कर्म के द्वारा नरक और तिर्य्यगगर्भ संभव दुःखों को देखते हुये एवं देव और मनुष्यादियों के अन्दर पैदा होने वाले दुःख ओर सुःख इन दोनों में क्या अधिक प्राप्त हुआ?

भगवान आवट्य के इस प्रकार पूछने पर मुनि जैगीषव्य ने कहा कि दस महासर्गों के अन्दर बार-बार जन्म लेते हुए मैंने जो भी नरक एवं तिर्य्यग आदि योनियों में दुःख को तो देखा ही किन्तु देव और मनुष्यों में भी बार-बार पैदा होने पर जो कुछ मैंने देखा मैं उस सबको दुःख ही दुःख जानता हूँ। भगवान जैगीषव्य के इस प्रकार कहने पर उनके गुरुदेव भगवान आवट्य फिर बोले अरे जैगीषव्य तुमने प्रधान वशीत्व को प्राप्त करके जिस सन्तोष सुख को प्राप्त किया क्या उसको भी दुःख पक्ष में ही डाल दिया? जैगीषव्य ने उत्तर दिया कि हे प्रभो विषय सुख की अपेक्षा सन्तोष सुख अवश्य उत्तम है, किन्तु कैवल्य की अपेक्षा यह भी एक दुःख ही है। क्योंकि यह बोद्धेय बुद्धिसत्व का धर्म है और त्रिगुण भी एक ज्ञान है और प्रत्यय होने के कारण हेय पक्ष में ही इसको लगाया गया है। और दुःख का स्वरूप जो है तृष्णा जाल का विस्तार है। तृष्णा जाल के विस्तार को छोड़कर के मनुष्य त्रिगुण विस्तार से रहित होकर ही अबोध सुख को प्राप्त करता है। इसलिए हे पुत्र! देखो भगवान जैगीषव्य ने योगविधि से जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों को जानकर के जन्म-जन्मान्तर में होने वाले एवं एक जाति से दूसरी जाति में बदलने वाले अपने जन्मों में केवल दुःख ही दुःख प्राप्त किया।

प्रश्न : हे गुरुदेव! कृपा करके यह समझाइये कि मुनि जैगीषव्य जी ने अपने पूर्व जाति के संस्कारों को किस प्रकार जाना, योग का यह कौनसा तरीका है। मैं तो पूरी तरह से योग को जानता ही नहीं हूँ, फिर भी आप कृपा करके मुझे यह बतलाइये कि एक योगी अपने पूर्व जन्मों के संस्कारों को एवं अपनी पूर्व जातियों में अनुभूत दुःख सुख को किस प्रकार से जान जाता है। वह योग का कौनसा तरीका है?

उत्तर : हे पुत्र देखो! एक योगी योगाभ्यास करता हुआ जब धारणा, ध्यान, समाधि में सफलता प्राप्त कर लेता है। तब उसको निरन्तर अभ्यास करने पर संयम सिद्ध हो पाता है। और संयम सिद्ध हो जाने पर योगी जब-जब जिस स्थान पर संयम करता है वहाँ वहाँ पर वह उस वस्तुतत्व के पूरे-पूरे ज्ञान को प्राप्त कर लिया करता है। देखो भगवान पतंजलिदेव पूर्वजाति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसी प्रकार का उपदेश करते हैं:

संस्कार साक्षात्कारणात्पूर्व जातिज्ञानम्।।

व्यास भाष्य—

द्वये खल्वमो संस्कारा: स्मृतिक्लेश- हेतवो वासनारूपा: विपाकहेतबोधर्माधर्मरूपा:, ते पूर्व भवाभिसंस्कृता:, परिणामचेष्टानिरोधशक्तिजीवन-धर्मवदपरिद्रष्टा-श्चित्तधर्मा, तेषु सयम: संस्कार सा-क्षात्क्रियायै समथ: न च देशकालनिमित्ता-नुभवैर्विना तेषामस्ति साक्षात्कारणं, तदित्थं संस्कार साक्षा-त्कारणात्पूर्वजाति ज्ञानमुत्पद्यते योगिन:, परत्रा-प्येवमेव संस्कारसाक्षात्कारणात्परजातिसंवेदनम्।।

अर्थात् संस्कारों में साक्षात्कार पर्यन्त संयम करने योगी को पूर्व जाति का एवं पूर्व जातियों में अनुभूत दु:ख सुख आदि का पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है। संस्कार दो प्रकार के होते हैं- स्मृति ओर क्लेश के कारण वासना रूप संस्कार एवं कर्मफल के कारण भूत धर्मा-धर्म रूप संस्कार। वो सारे संस्कार पूर्व जन्मानुभूत परिणाम चेष्टा निरोध शक्ति जीवन और धर्म की तरह देखे गये चित्त धर्म हुआ करते हैं। उन सब में संयम संस्कार साक्षात्कार के लिए ही किया जाता है। वह सब भी देश काल के निमित्त अनुभव के विनाही उनका साक्षात्कार होता है। इस प्रकार से संस्कार साक्षात्कार करने से योगी को पूर्वजाति का ज्ञान हो जाता है। और इसी प्रकार किसी दूसरे के संस्कारों का साक्षात्कार करने से दूसरे की जाति का ज्ञान भी योगी को ही जाता है।

इस प्रकार योगाचार्य तपोनिधि जी ने अपना यौगिक सत्संग का कार्यक्रम इस श्लोक के उच्चारण के साथ समाप्त किया—

सर्वे भवन्तु सुखनि: सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दु:ख भाग्भवेत्।।

अर्थात् सब सुखी हो जायें, सब निरोग हो जायें। सब कल्याण ही कल्याण को देखें, कोई भी संसार में दु:खी न रहे। इस सत्संग को सुनने के बाद सब शिष्य मण्डली एवं तपोनिष्ठ ब्रह्मचारी वर्ग अपनी-अपनी कुटियाओं को लौट गये। एवं अपनी-अपनी साधना व नित्य कर्म में लग गये।

सिद्धकृपा कब और कैसे ?

यह क्या था? अनादिसिद्ध भगवान शिव की कृपा, उनका शक्तिपात, जिसके फलस्वरूप उसे दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो गई। यह एक अटल सिद्धान्त की बात है कि मनुष्य का उद्धार सिद्धकृपा से ही होता है और वह कृपा भी हर व्यक्ति पर नहीं हुआ करती, क्योंकि सबके इतने पुण्य नहीं होते। पुण्यों का खजाना जमा करना भी हर व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। क्योंकि एक व्यक्ति लोकहित के लिए कुआ खुदवाता है, बगीचा लगवाता है, मन्दिर बनवाता है, अस्पताल खुलवाता है या इसी प्रकार के अन्य पुण्यकार्यों को करता है और कहता है कि भाई! फल की तो मुझे कोई इच्छा नहीं है, मैंने करना था कर दिया। उसका इतना कहना भी पुण्य के फल को समाप्त करने के लिए काफी है। क्योंकि ''मैंने करना था कर दिया'' इस बात को भी फलासवित छिपी हुई है और अहंकार प्रकट होता है।

इसलिए मनुष्य को तप करना चाहिए, स्वाध्याय करना चाहिए और ये सभी कर्म नियमानुवर्तिता से करने चाहिए। जो मनुष्य नियम का पक्का है, वह कालान्तर में निष्काम बन जाता है। उसके अन्दर सतोगुण का पूर्ण विकास हो जाता है। सतोगुण का फल गीता में इस प्रकार बतलाया गया है—

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा यदा विद्याद्वि वृद्धं सत्वमित्युत।।

जब साधक के रोम-रोम से प्रकाश की धारायें फूटती सी प्रतीत हों, अन्त:करण और इन्द्रियों में चेतनता और बोधशक्ति उत्पन्न होने लगे तथा हृदय आनन्द से परिपूरित हो तब समझना चाहिए कि उसके अन्दर सतोगुण बढ़ गया है।

सतोगुण बढ़ जाने पर साधक का हृदय प्रेम का पुतला बन जाता है। किसी प्रकार की लौकिक कामना उसके अन्दर नहीं रहती। उसकी यह स्थिति बन जाती है, कि जिसके लिए नानकदेव जी ने लिखा है-

नाम खुमारी नानका चढ़ी रहत दिन-रात।

ऐसीं स्थिति में प्रणिधान (आत्मसमर्पण) स्वयं ही हो जाता है। प्रणिधान का लक्षण है-

सर्व कमणां परमगुरावीश्वरे अर्पण प्रणिधान तत्फल संन्यासो वा।

अर्थात् अपने समस्त कर्मों को परम गुरु ईश्वर के अर्पण कर देना अथवा उनके फलका त्याग करना प्रणिधान कहलाता है।

प्रणिधान (आत्मसमर्पण) हो जाने पर इष्टदेव के हृदय में अपने उपासक के कल्याण के लिए जो भी संकल्प उठता है वही उसके उद्धार का कारण बन जाता है। अत: सिद्ध कृपाभाजन बनने के लिए मनुष्य को पुण्यसंग्रह करते रहना चाहिए और वह स्थिति प्राप्त कर लेनी चाहिए कि—

सुनत न काहू की कही कहत न अपनी बात।
नारायण वा रूप में मगल रहत दिन रात।।

बड़ी लम्बी घीया बेलों पर लगी हुई दिखलाई देने लगीं। श्री प्रभुजी ने एक घीया उतार कर खेत वाले से कहा ''ले देख तू तो कहता था कि हमारे खेत में घीया ही नहीं है। किंतु इतनी बड़ी लम्बी-लम्बी घीया तेरे खेत में पड़ी हैं। साधक खाने वाले उन घीयाओं को खाकर तृप्त हो गये। उस दिन से उसके खेत में घीयाओं के फलों का पारावार न रहा। दूसरे दिन से आश्रम के सभी साधकों के लिये जितनी भी वे सब्जी खा सकते थे, उसने मुफ्त देने आरम्भ कर दीं। अभी तक भी सवांई गांव के वासी लोग इस विलक्षण घटना को निरन्तर स्मरण करते रहते हैं।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

प्रश्न : पूज्य गुरुदेव! शास्त्रों में ईश्वर के लिये योगी, महायोगी, योगेश्वर आदि नामों का प्रयोग किया गया है, इसका क्या कारण है? क्या वह सचमुच योगी हैं और यदि ऐसी ही बात है तो उसमें और दूसरे योगियों में क्या अन्तर है?

उत्तर : प्रिय वत्स! योग का प्रवर्तक, योग का अधिष्ठान और योग का स्वामी होने के कारण ईश्वर योगी ही है। इसलिये शास्त्रों में उसके लिये जो योगी, महायोगी आदि सम्बोधन लिखे गये हैं, वे यथार्थ ही हैं। भगवान पतंजलिदेव जी महाराज ने अपने योगदर्शन में ईश्वर का लक्षण इस प्रकार किया है—

क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः। अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाकाशय से जो बिल्कुल अछूता है, जिसको क्लेश कर्म विपाक कभी लगे ही नहीं ऐसे पुरुष विशेष का नाम ईश्वर है।

ये क्लेश, कर्म और विपाक साँसारिक मनुष्यों के ही हुआ करते हैं योगियों के छूट जाया करते हैं। क्योंकि उनके कर्म आकृष्ण आशुक्ल (पाप-पुण्य से रहित) होते हैं। अतः उनसे कर्माशय नहीं बनता।

ईश्वर में और साधन सिद्ध इतर योगियों में अन्तर केवल इस बात का है कि- वे तीन बन्धनों को काटकर मुक्त हुए हैं किन्तु ईश्वर अनादिकाल से स्वतः ही उन बन्धनों से मुक्त है। अतः वह अनादि महासिद्ध है, अनादि महायोगी है। उसे सिद्ध बनने की कभी आवश्कता ही नहीं पड़ी और न उसकी शक्ति में किसी काल में कोई कमी ही आई। उपरोक्त सूत्र के व्यास भाष्य में यह बात स्पष्ट कर दी गई हैं—

''ते तावत् त्रीणि बन्धनानि छित्वा मुक्ताः ईश्वरस्य तु तत्सम्बन्धों न भूतो न भावी स हि सदेव मुक्तः सदैवेश्वरः प्रकर्षगत्या सिद्धः इति''।

इसलिये ईश्वर भी योगी ही है। वह सबसे बड़ा योगी है और सबसे अधिक सामर्थ्य वान है।

प्रश्न : परम पूज्य गुरुदेव! क्या हर व्यक्ति योगो बन सकता है? यदि हो तो उसका क्या उपाय है?

उत्तर : प्रिय सौम्य! प्रयत्न करने से हर व्यक्ति योगी बन सकता है इसमें कोई संदेह नहीं, किन्तु यह आवश्यक है कि वह संयमी हो तथा नियमानुवर्तिता का पालन करने वाला हो। इस सम्बन्ध में अखिलात्मा श्रीकृष्ण ने गीता में अपने मुखारविन्द से कहा है।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।
युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधव्य योगो भवति दुःखहा।।

अर्थात् असंयमी व्यक्ति योग को प्राप्त नहीं होता, इसके विपरीत जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक मन सहित इन्द्रियों को वश में कर लेता है ऐसा जितेन्द्रिय व्यक्ति योग को प्राप्त कर लेता है।

जिस व्यक्ति का आहार-विहार ठीक हो, कर्मों में युक्त चेष्टा हो, जो निश्चित समय पर सोता हो और ठीक समय पर जाग जाता हो, दुःखों को नष्ट करने वाला यह योग उसी को व्यक्ति का सिद्ध होता है।

इसके अतिरिक्त योगी बनने का एक और तरीका है कि मनुष्य जीवन भर पुण्य कर्म करता चला जाये, पुण्यों का खजाना बढ़ाते-बढ़ाते कालान्तर में वह निष्कामता को प्राप्त हो जाता है और अनायास ही सिद्धयोग का अधिकारी बन जाता है।

योगशिखोपनिषद् का वचन है:—

पश्चात्पुणयेन लभते सिद्धेन सह सगतित्।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।
ततो नश्यति संसारोऽयं नान्यथा शिव भाजितत्।।

अर्थात् पुण्य बढ़ जाने पर मनुष्य को संगति प्राप्त होती है। तब सिद्ध की कृपा से वह योगी बनता है और तब उसका संसार चक्र नष्ट होता है। वह आवागमन से मुक्त हो जाता है। बिना सिद्ध कृपा के मनुष्य पूर्णयोगी नहीं बन सकता। यह शिवजी का कथन है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! यह तो ठीक है कि सिद्धकृपा से मनुष्य योगी बन सकता है और अजरत्व-अमरत्व को प्राप्त हो सकता है किन्तु सिद्धपुरुष की पहचान क्या है? कृपया यह भी बतला दीजिये।

उत्तर : सौम्य! सिद्धलोग अपनी पहचान स्वयं ही करा देते हैं, यदि कोई सांसारिक व्यक्ति अपना बुद्धि और इन्द्रियों से उन्हें जानना चाहें तो उस उनमें कोई विशेषता नजर नहीं आयेगी। क्योंकि ''वृत्तिसारूप्यमितरत्र'' योगशास्त्र के इस सिद्धान्तानुसार सिद्धयोगी भी व्युत्थान काल में गुणवृत्ति के अनुसार सभी प्रकार के लोकव्यवहार किया करता है। इससे सांसारिक जन भ्रमित हो जाते हैं और उसकी सिद्धता में सन्देह करने लगते हैं।

जब सिद्धपुरुष विशेष कृपापूर्वक किसी को अपना वास्तविक स्वरूप दिखला देता है। तभी वह उसे जान पाता है। श्री रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने इष्टदेव भगवान राम के लिये ये शब्द लिखे हैं—

सोई जाने जेहि देहु जलाई।
जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई।।

यही बात सिद्धों पर भी लागू होती है। फिर भी मोटे तौर पर सिद्धपुरुषों की यह निशानी है कि-उनके दर्शनों से चित्त प्रसन्न होता है, उनके समीप बैठकर ओर उनसे वार्तालाप करता हुआ मनुष्य अपने सभी दु:खद्वन्दों को भूल जाता है। उनमें स्वाभाविक ही यह आकर्षण होता है कि- मनुष्य उनके उपदेशों को सुनते ही रहना चाहता है तथा जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक उनकी शरण में आ जाता है वह सदा सदा के लिये उन्हीं का ही बन जाता है।

प्रश्न : पूज्य गुरुदेव! कृपापूर्वक यह भी बतला दीजिये कि जिन व्यक्तियों की कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो चुकी है क्या उनकी गणना भी सिद्धों में का जा सकती है?

उत्तर : सौम्य! वे पूर्ण सिद्ध या पूर्ण योगी तो नहीं कहे जा सकते, हाँ सिद्धों के कृपापात्र अवश्य होते हैं। वे अभी युञ्जन योगी हैं, प्रयत्नशील योगी हैं। कालान्तर में वे भी अपने अभ्यास के आधार पर और सद्गुरु कृपा से पूर्णता को प्राप्त हो जाते हैं और सिद्धों की श्रेणी में आ जाते हैं।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

योगाचार्य श्री तपोनिधि जी आज बड़े ही प्रफुल्लित दिखाई दे रहे हैं। वह अपनी समाधि से उठ चुके हैं। वातावरण बहुत ही शान्त है। आश्रम में स्थान-स्थान पर संकीर्तन ध्वनियाँ चल रही हैं। शास्त्रीय संगीत के राग आलापित किये जा रहे हैं। इधर-उधर तपोधन की यज्ञशालाओं से यज्ञ धूम उठ रहा है। शनैः-शनैः योगाचार्य श्री तपोनिधि जी के सभामण्डल में जिज्ञासु श्रोताओं की भीड़ बढ़ रही है। वह सभी इस आशा में हैं कि योगाचार्य कब अपने आसन पर आसीन हों और उनके मुखारविन्द से पवित्र योगामृत का पान करें। इतनी ही देर में जिज्ञासुओं की परम उत्कष्ठा को देख करके योगाचार्य श्री तपोनिधि जी ने योगोपदेश आरम्भ किया। उन्होंने बतलाया कि बेटा पिछले सत्संग में निर्विचार समाधि का वर्णन कर दिया गया था। निर्विचार समाधि में समाधिस्थ योगी जब इस समाधि की निर्मलता को प्राप्त करता है तो वह अध्यात्म प्रसाद को पा जाता है, और फिर प्रज्ञालोक में प्रवेश करके पूर्णरूपेण कृतार्थ हो जाया करता है। इस पवित्र उपदेश को सुन करके ब्रह्मचारी कपिलदेव ने प्रश्न किया कि हे प्रभो! कृपा करके प्रज्ञाप्रसाद की क्या महत्ता है, वह सब आप हम लोगों के हितार्थ बतलाने की कृपा करें।

निर्विचार समाधि की निर्मलता में योगी को स्फुटप्रज्ञा-लोक होता है।

प्रज्ञा प्रसादमारूह्या शोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थ सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

ऐसी स्थिति में योगी सब चिन्ताओं से रहित होकर सांसारिक प्रवाह में बहते हुए प्राणियों को इस प्रकार देखता है जिस प्रकार पहाड़ पर खड़ा होकर मनुष्य जमीन वालों को देखता है। इस स्थिति में समाधिस्थ योगी को 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञाः'— ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है उस समय योगी जो कुछ देखता है सत्य देखता है। इस बुद्धि का विषय श्रुत और अनुमान से बहुत आगे का होता है इसके संस्कार अन्य संस्कारों को रोक देते हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धि के आमोद-प्रमोद आह्लादादि विषयों में ज्योंही योगी संयम करता है, त्योंही अपने आपको आनन्दमय देखने लगता है। यही संप्रज्ञात समाधि की तीसरी स्थिति 'आनन्दानुगत' की है। इसी प्रकार पुरुष की दृग शक्ति और बुद्धि की दर्शन शक्ति जब एक रूप में भाषित होती है और उसमें योगी संयम करता है, तब वह 'अस्मितानुगत' योग को प्राप्त होता है। इस अस्मितानुगत योग में पुरुष की दृग शक्ति और बुद्धि की दर्शन शक्ति क्योंकि एकाकार भाषित होती है, इसलिए इसको जड़-चेतन की गांठ कहा गया है। विवेकख्याति के द्वारा ही स्फुट प्रज्ञा लोक हो जाने के बाद विवेकख्याति से ही जड़-चेतन गांठ खुल जाती है, और ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा ही अन्य संस्कारों का प्रतिरोध होने के बाद निर्बीज समाधि को योगी प्राप्त करता है। यही परम पुरुषार्थ है निर्बीज समाधि को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को किन-किन उपायों का अवलम्बन लेना पड़ता है। इसके विषय में यद्यपि शास्त्रों के बहुत से मत हैं, जिनके विषय में हम आगे चलकर वर्णन करेंगे, किन्तु भगवान पतञ्जलि जी ने इस विषय में दो सूत्रों की रचना की जिसमें पहला सूत्र-

भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्।

तथा

श्रद्धा वीर्य स्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक-इतरेषाम्।

इन सूत्रों के अनुसार संसार में जन्म लेने वाले प्राणियों को इस योग की प्रतीति दो ही प्रकार से ही होती है, उनमें (१) पहले प्राणी वे हैं जो अपने जन्म-जन्मान्तर के अभ्यास से सम्प्रज्ञात योग की वितर्क और विचारानुगत समाधि में पूर्णतः प्रविष्ट हो चुके हैं। और बाद में अभी निर्बीज समाधि तक नहीं पहुँच पाये थे अभी उनको विवेक ख्याति नहीं हुई थी, इतनी ही अवस्था में उनका देहपात हो गया, ऐसे योगी दो प्रकार के होते हैं—

(१) विदेह (२) प्रकृतिलीन।

(१) विदेह — वे कहलाते हैं जो वितर्क समाधि द्वारा स्थूल महाभूतों का और उनके विषयों का पूर्ण साक्षात्कार कर चुके हैं इसलिए वे शरीर की असलियत को समझ करके देहाभिमान से शून्य हो चुके हैं और इतनी साधना के बाद उनका शरीर छूट गया और वे सम्प्रात योग की आगे

की सीढ़ियों तक नहीं पहुँच सके अत: वे लोग की सीढ़ियों तक नहीं पहुँच सके अत: वे लोग विदेह कहलाते हैं और देवकोटि में माने जाते हैं।

(२) प्रकृतिलीन — वे योगी हैं जो स्थूल महाभूतों और उनके गुणों का पूर्ण साक्षात्कार करते हुए निर्विचार समापत्ति में पंच तन्मात्र, अहंकार और महत्तत्व और प्रकृति का साक्षात्कार कर चुके हैं व अभी वह प्रकृति के इन सूक्ष्म तत्वों का साक्षात्कार करते हुए इन्हीं में लीन रहे हैं, आगे की भूमिकाओं को तय नहीं कर पाये हैं और अचानक देहपात हो गया, इसलिए ये लोग प्रकृति लीन कहलाते हैं ये भी प्राणी देवकोटि में माने जाते हैं। इसलिए भगवान व्यासदेव जी ने इन लोगों के लिए—

विदेहानां देवानां भव प्रत्यय: तेहि स्वसंस्कार मात्रोपगेन चित्तेन कैवल्य पदमिवानुभवन्त: स्वसंस्कार विपाक तथा जातीयकमीतवाहयन्तित तथा प्रकृतिलया: साधिकारे चेतसि प्रकृतिलीने कैवल्य पदमिवानुभवन्ति यावन्न पुनरावर्त्ततेऽधिकार वशा-च्चित्तमिति।

'कैवल्य पदमिवानुभवन्ति' कह करके भगवान व्यासदेव जी ने इनको मुक्ति पद में तो नहीं माना किन्तु मोक्ष जैसी स्थिति को ये लोग प्रकृतिलीन होते हुए भी मोय पद जैसा अनुभव करते हैं। क्योंकि अभी इनका ग्रन्थिभेद नहीं हुआ अर्थात् विवेक ख्याति को प्राप्त नहीं हुये। इसलिए इनका चित्त साधिकार है और अधिकार वश इन लोगों का संसार में जन्म होता है, क्योंकि पिछले जन्म-जन्मान्तरों में इनकी योग में ऊँची प्रगति रही थी इसलिये बहुत लम्बे समय तक ये विदेह, प्रकृतिलीन रहते हुए भी अपने आपको मुक्त आत्माओं की तरह अनुभव कर रहे थे। बुद्धि के आह्लाद, आमोद-प्रमोद आदि विशेष भावों में लीन हुए अपने आपको मग्न मोक्ष रूप देखते रहे किन्तु विवेक ज्ञान के हुए बिना इनका चित्त साधिकार है इसलिए इन्हें संसार में दुबारा जन्म लेना पड़ता हैं और जन्म से ही इनको पूर्वजन्म-जन्मान्तरों में जो अभ्यास किया था, उसकी प्रतीति होने लगती है और फिर उस स्थिति को पा करके जल्दी ही अपने पूर्ण लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। इन लोगों की कुछ हानि नहीं हुई क्योंकि ये लोग विदेहावस्था में व प्रकृतिलीनावस्था में परमानन्द में रहे तथा जन्म लेने पर अनेक जन्मों में किया हुआ अभ्यास सामने आया और पुन: उसी योग समाधि में प्रवृत्त हो गये। इसी प्रकार का प्रश्न गीता के छठे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण जी से अर्जुन ने किया—

अयति: श्रद्धायोपेतो योगाच्चलितमानस:।
अप्राप्य योग संसिद्ध कागतिं कृष्ण गच्छति।।
कच्चिन्नोभयं विभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढ़ो ब्रह्मण: पथि।।
एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्य शेषत:।
त्वदन्य: संशयस्यास्य छेत्तानह्यु पपद्यते।।

अर्थात् अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण जी से प्रश्न करता है कि हे श्रीकृष्ण! जो व्यक्ति श्रद्धा से युक्त हे और अपने आपको काबू में नहीं रख सका है और योगाभ्यास करते-करते जिसका मन विचलित हो गया है वह योग सिद्धि को न पा करके किस गति को प्राप्त होता है? कदाचित् उभय भ्रष्ट हो करके फटे हुए बादल की तरह से नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता, क्योंकि अभी उसने अपने स्वरूप में स्थिति नहीं पाई और ब्रह्मज्ञान को नहीं पा सका। मेरे इस संशय को नाश करने वाला आपके अतिरिक्त हे श्रीकृष्ण दूसरा कोई नहीं है, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अखिल अण्ड ब्रह्माण्ड के नायक परम योग-योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण जी ने कहा-

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिछ्द्दुर्गतिं तात गच्छति।।
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीं समा:।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।
अथवाप योगीनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धिदुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भृय: संसिद्धौ कुरुनन्दन।।
पूर्वाभ्यासेन तेनैवहियतेह्यवशोऽपि स:।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते।।
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विष:।
अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।

भगवान श्रीकृष्ण जी उत्तर देते हैं कि हे अर्जुन! ऐसे पुण्यात्माओं का इस लोक व परलोक में कहीं भी पतन नहीं होता। कोई भी शुभ कर्म करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं हो सकता। वे लोग पवित्र पुण्यात्माओं के लोकों को प्राप्त होकर और बहुत समय तक वहां रहकर पुन: पवित्र श्रीमानों के घरों में ही जन्म ग्रहण करते हैं या बुद्धिमान योगियों के घरों में ही जन्म होता है। इस मनुष्य लोक में इस प्रकार का जन्म ग्रहण करना भी अत्यन्त दुर्लभ है और ऐसा जन्म हो जाने के बाद उन योगियों को अपना पौर्वदेहिक बुद्धि संयोग प्राप्त होता है और उस बुद्धि संयोग को पा करके वे लोग पुन: सिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं क्योंकि पूर्वजन्मों में उन्होंने इस प्रकार का योगाभ्यास किया था। इसी कारण से विवश होकर उनको इस मार्ग में लगना पड़ता है। योग मार्ग का जिज्ञासु भी कर्म काण्ड के विषय से ऊँचा उठ जाता है, और प्रयत्न पूर्वक यत्न करता हुआ अपने सब पापों को

धोकर अनेक जन्मों के प्रयत्न से परमगति को पा लेता है इसीलिए भगवान पतञ्जलि जी की आज्ञानुसार जो लोग सम्प्रज्ञात समाधि में ही किसी प्रकार से विफल हो जाते हैं और निर्बीज समाधि को प्राप्त नहीं हो पाते हैं उनको जन्म से ही इस योग की प्रतीति होती है और वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं, उसके बाद दूसरी श्रेणी उन लोगों की है जिन्हें नया-नया योगारम्भ करना है पिछले जन्म का कोई विशेष संस्कार है ही नहीं। ऐसों के लिए—

उपाय प्रत्ययो योगिनां भवति।

कह कर भगवान व्यासदेव जी ने योगारम्भ करने वालों को उपाय प्रत्यय का निर्देश किया है और उसमें—

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

संसार मैं जन्म लेने वाला हर एक प्राणी योग की महान महिमा और योग की अनेक विधि ऐश्वर्य, अनेक प्रकार की गतियों के चमत्कारिक व्याख्यान को सुनता है तो उसके मन में योग के प्रति

श्रद्धा पैदा होती है। श्रद्धा के विषय में भगवान व्यासदेव जी लिखते हैं—

श्रद्धा-चेतसः सम्प्रसादः साहि जननीव कल्याणी योगिनं पाति।

मनुष्य को जिस विषय में श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है वह माता की तरह उसकी रक्षा करती है, किन्तु सारे संसार के प्राणी श्रद्धावान बन जाँय यह असम्भव है। सत्वानुरूप प्राणी मात्र के अन्दर श्रद्धा हुआ करती है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के सत्तरहवें अध्याय के तीसरे श्लोक में स्पष्ट शब्दों में लिखा है यथा—

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारतः।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यछ्द्धः स एव सः।।

सत्वानुरूप प्राणी मात्र की श्रद्धा होती है और उस परम पुरुष परमात्मा का रूप श्रद्धामय है जिसकी जैसी श्रद्धा है वैसे ही उस परमात्मा का स्वरूप है। अविचल श्रद्धा प्राप्त हो जाने पर योगी के मन में उत्साह बढ़ता है और उत्साह बढ़ जाने के बाद जब वह अपने स्वरूप प्रतिष्ठा रूप परमयोग को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है तो उसकी स्मृति उपस्थित होती है। स्मृति से जिन-जिन विषयों में वह ध्यान लगता है वे कायम रहते हैं। चित्त एकाग्रता की ओर जाने लगता है, ज्यों-ज्यों उसका ध्यान स्थिर होता है त्यों-त्यों समाधि का प्रकाश होता रहता है, और समाधि प्राप्त होने पर समाधि के निर्मल प्रवाह की विशुद्धता बढ़ जाने पर प्रज्ञा विवेक उत्पन्न होता है— ''ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'' ये बुद्धि अन्वार्थी है। सदा सर्वदा सत्य को धारण करती है। इसके प्राप्त हो जाने पर योगी हर वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानकर परवैराग्य को प्राप्त होता है, क्योंकि योगी हर वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जान उन सब में दुःख का अनुभव करता है। इसलिए दृष्टानुश्रविक विषयों में वितृष्ण होकर पुरुष ख्याति को प्राप्त होता है। व्यक्ताव्यक्त धर्मों के गुणों में विरक्त होकर कृतार्थ हो जाता है और प्रत्युदित ख्याति योगी जिसने परवैराग्य को प्राप्त कर लिया है, अनुभव करता है—

प्राप्तं प्रापणीयं क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः छिन्नः श्लिष्टपर्वा भवसंक्रमो यस्याविच्छेदाज्जनित्वा म्रियते मृत्वा च जायते इति।

मुझे जो कुछ पाना था, पा लिया, क्षीण होने के लायक क्लेशों को क्षय कर दिया, पोरी दर पोरी जुड़ा हुआ, भव संक्रम काट दिया, जिसके न काटने से जन्म लेकर मरना पड़ता था और मरकर जन्म लेना पड़ता था। ज्ञान की पराकाष्ठा का नाम ही परवैराग्य है और यह मोक्ष का स्वरूप है। इसके उदय हो जाने पर योगी स्वरूप प्रतिष्ठा रूप निर्बीज समाधि को प्राप्त कर लेता है और कृतार्थ हो जाता है। इस प्रकार का अभ्यास करने वाले योगियों में भी तारतम्य देखने में आता है उनमें से (१) मृदु उपाय (२) मध्योपाय (३) अधिमात्रोपाय से ये योगी तीन प्रकार के होते हैं, और उमनें भी मृदु उपाय वाले योगी भी तीन प्रकार के होते हैं— (१) मृदु संवेग (२) मध्य संवेग (३) तीव्र संवेग। इसी प्रकार से मध्योपाय वाले योगी को तीन प्रकार के होते हैं— (१) मृदु संवेग (२) मध्य संवेग (३) तीव्र। इसी प्रकार से अधिमात्रोपाय वाले योगी तीन प्रकार के होते हैं। (१) मृदु संवेग (२) मध्य संवेग (३) तीव्र संवेग। ये सब

मिलाकर नौ प्रकार हो गये। इनमें से जो योगी अधिमात्रोपय वाले तीव्र संवेग वाले हैं उनको शीघ्रातिशीघ्र समाधि लाभ तथा समाधि का फल प्राप्त होता है।

तीव्र संवेगानामासन्नः।

अर्थात् जिस योगी का उपाय तीव्र होता है और उसका प्रयत्न भी तीव्र होता है उसको शीघ्रातिशीघ्र समाधि प्राप्ति के लिए मृदु उपाय मिला है। और प्रयत्न भी हल्का है उस हालत में उतना ही विलम्ब समाधि में होगा। इसी प्रकार मध्योपाय वाले तथा मृदु उपाय वाले को संवेग व तीव्र उपाय है उतनी ही जल्दी समाधि और समाधि के फल को प्राप्त कर सकता है। निर्बीज समाधि की प्राप्ति के लिए दो प्रकार के खास उपाय हैं जो भगवान पतञ्जलि जी ने लिखे हैं उनका वर्णन कर दिया गया। भव प्रत्यय वाला योगी कोई विरला ही होता है और उसको अपने पूर्व संस्कारवश उसी प्रकार के उपाय उसी प्रकार के सहवास, सत्संग, उसी प्रकार की तीव्र बुद्धियोग प्राप्त हो जाना आवश्यक होता है। किन्तु जो लोग उपाय प्रत्यय आरम्भ करते हैं उनके अन्दर श्रद्धा, वीर्यं, स्मृति, समाधि आदि का क्रमशः होना परम आवश्यक है।

हे पुत्रो! मैंने संक्षेप में तुम्हें सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दोनों समाधियों को समझाया है। वस्तुतः इसी का नाम योग है न कि अनेक प्रकार की छोटी-छोटी राजस्, तामस आदि उपासनाओं को करने वाले का नाम योगी हो सकता है। तुम सभी को इस पवित्र योगमार्ग का अनुसरण कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। जब तक मनुष्य निर्बीज समाधि को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसका पुरुषार्थ अधूरा है, उसे धैर्यपूर्वक सतत् प्रयत्नशील अधूरा है, उसे धैर्यपूर्वक सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए। धैर्य से जो अपने साधन में लगे रहते हैं वे अवश्य ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। याद रखो अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण की वाणी को-

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगो संशुद्ध किल्विषः।
अनेक जन्मसंसिद्धस्ततोयाति परां गतिम्।।

अर्थात् जिसका अधिमात्रोपाय व तीव्र संवेग नहीं है वह अपने मन्द प्रयत्न के द्वारा भी निर्बीज समाधि रूप परमगति को पा लेता है, फिर जिनके संस्कार उत्तम हैं उनका तो कहना ही क्या?

योग का तो जिज्ञासु भी कर्मकाण्ड के दायरे से आगे निकल जाता है-

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मतिवर्तते।

अतः जो लोग योग सिद्धान्तों को समझ कर गुरु के बतलाये मार्ग के अनुसार शास्त्र विधि से योगाभ्यास करते हैं उनके परम कल्याण में तो शंका ही क्या हो सकती है? अतः तुम सब पवित्र योगमार्ग का अनुसरण कर अपने-अपने जीवन को सफल बनाओ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भ्रदाणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

आज का सत्संग इन शब्दों के साथ समाप्त होता है। सभी को आशीर्वाद।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

आश्रम का पवित्र वातावरण है, सघन वृक्षों की कुञ्ज-निकुञ्ज अपनी लता-पताओं से बहुत ही शोभित हो रही हैं। बीच-बीच में परम तपस्वी विरक्त सन्तों की पर्णशालाओं का दृश्य बहुत ही मनोहर है। स्थान-स्थान पर ब्रह्मचारी लोग पवित्र वेद ध्वनि कर रहे हैं। हठाभ्यासी लोग अपनी-अपनी कुटियाओं में अपने-अपने अभ्यास में लगे हुए हैं। यज्ञ धूम से वातावरण बहुत ही पवित्र, शुद्ध एवं सात्विक बन चुका है। आश्रम में धीरे-धीरे योगाचार्य जी के दर्शनार्थी लोग बढ़ रहे हैं। एक ओर ब्रह्मचारियों की योगासन करती हुई श्रेणी दिखलाई दे रही है। योगाचार्य श्री तपोनिधि जी अभी अपनी पर्णकुटीर में समाधिस्थ हैं। किन्तु उनके उठने का समय हो गया है। यह देखो! प्रणव ध्वनि कुटिया में गूँज उठी है। मालूम पड़ता है योगाचार्य जी उठ गये हैं और अब बहुत जल्दी ही आधि व्याधि से तपित प्राणियों को सान्त्वना और शान्ति देने के लिए बाहर आने वाले हैं।

यह देखो! योगाचार्य कुटिया से बाहर आ रहे हैं। सभी शिष्य मण्डली ने आचार्य को भूमिष्ठ साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। इधर-उधर से आने वाले सत्संगी समुदाय ने आकाश तल को जय ध्वनियों से निनादित कर दिया। योगाचार्य की जय हो! प्राणिमात्र के परम सुहृद योग-योगेश्वर की जय हो!

योगाचार्य सत्संग मण्डल में आकर वरद अभय मुद्रा से अपने आसन पर आसीन हो गये। एवं करुणा भरी दृष्टी से अपने सत्संगी बच्चों की ओर दृष्टि धुमाकर देखा। मालूम पड़ता था आचार्य अपनी कृपा दृष्टि से दर्शक समुदाय को कृतकृत्य कर रहे हैं। शनै:-शनै: श्री योगाचार्य जी ने अपना पवित्र योगोपदेश आरम्भ किया।

प्रज्ञा प्रसाद मारुह्याशोच्य: शोचतोजनान।
भूमिष्ठानिव शैलस्थ: सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् बुद्धि के महल पर आरूढ़ होकर अभ्यासी स्वयं अशोच्य हो जाता है, वह बिलकुल राग-द्रेष रहित एवं चिन्तारहित रहता है। जिस प्रकार पर्वत पर खड़ा हुआ मनुष्य नीचे भूमि में खड़े हुए व्यक्तियों को आराम से देखा करता है उसी प्रकार प्रज्ञा-प्रसाद आरूढ़ होकर मनुष्य सारे संसार के आधि-व्याधि ग्रसित प्राणियों को देखा करता है। उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। संसार के दु:ख द्वन्दों से विमुक्त होकर वह अपने स्वरूप में स्थित रहता है।

सामने बैठी हुई शिष्य मण्डली में से योग प्रवीण शिष्य कपिलदेव ने विनम्र भाव से करबद्ध होकर आचार्य से प्रार्थना की कि प्रभो! स्थितप्रज्ञ के क्या लक्षण होते हैं वह क्या खाता-पीता है, कैसे उठता-बैठता है? कृपाकर हम अपने बच्चों को यह सम समझाइये?

उत्तर : आचार्य ने अपने बालक की उत्कृष्ट जिज्ञासा देखकर उपदेश देना आरम्भ किया और कहा कि बेटा तुम्हारा प्रश्न उत्तम है। वस्तुत: स्थितप्रज्ञता की सभी को आवश्यकता है। संसार के दु:ख-द्वन्दों से तपित प्राणी स्थित प्रज्ञता को पाकर ही शाश्वत् शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं। महाभारत की लड़ाई के समय में एक बार अर्जुन ने भी अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण से यही प्रश्न किया था जो तुम आज हमसे पूछ रहे हो। हम भी वही अखिलात्मा, अखिल अण्ड ब्रह्माण्ड नायक, जगदीश्वर के मुख से निकला हुआ पावन उपदेश तुम्हें सुनाते हैं। बेटा मेरे, तुम्हारे एवं प्राणिमात्र के पवित्र आत्मा श्रीकृष्ण की इस पवित्र वाणी को तुम मन लगाकर सुनना एवं अपने जीवन में अक्षरश: घटित करना। भगवान ने अर्जुन को उपदेश दिया था—

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योग: कर्मसु कौशलम्।।
कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिण।
जन्म बन्ध विनिर्मुक्ता: पदं गच्छन्त्यनामयम्।।
यदा ते मोहकलिलं बुद्धिव्यति तरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेद श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।।

(गीता अ. २/५० से ५३)

अर्थात् जो मनुष्य स्थितप्रज्ञ हो जाता है वह पाप-पुण्य के के झमेले से परे हो जाया करता है। इसलिए हे अर्जुन! तुम योगमार्ग में लग जाओ और समत्व बुद्धि को अपनाओ।

समत्व बुद्धि युक्त योग ही कर्म कौशलता है। इस कर्म कौशलता युक्त बुद्धि को पाकर एवं कर्मफलों का त्याग करके जन्म-मरण को छोड़कर बुद्धिमान लोग अव्यय पद को प्राप्त कर लेते हैं। हे अर्जुन! जब तेरी बुद्धि इस मोहरूपी कीचड़ को पार कर जायेगी तब अब तक जो सुना है और आगे जो सुनेगा उसके सारभूत वैराग्य को प्राप्त हो जायेगा। अनेक प्रकार के सिद्धान्तों के सुनते-सुनते जो तुम्हारी बुद्धि इस समय विचलित सी हुई है, जब वह तेरी बुद्धि समाधि स्थिति में निश्चलता को प्राप्त कर लेगी तब तू सही रूप से योग को प्राप्त होगा।

भगवान के इस पवित्र उपदेश को सुनकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से सवाल किया, हे प्रभो! मुझे स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताइये–

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव:।
स्थितघी: किं प्रभाषेत किमासीत ब्रजेत किम्।।

अर्थात् हे प्रभो! ष्थितप्रज्ञ के क्या लक्षण हैं समाधिस्थ किसको कहते हैं। स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता है, कैसे बैठता है, और कैसे चलता है? उसके सब लक्षण कृपा कर मुझे समझाइये? अर्जुन के इस प्रश्न को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्ट: स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।
दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह:।
वीतराग भयक्रोध: स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।
य: सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वश:।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

अर्थात् हे अर्जुन! जब मनुष्य मनोगत (मन में आयी) हुई, समरत कामनाओं को छोड़ देता है और अपने आत्स्वरूप में ही स्थित रहता है वह मनुष्य स्थितप्रज्ञ कहलाता है और इसके अतिरिक्त जिस मनुष्य का मन दु:खों में विचलित नहीं होता और सुखों में आसक्त नहीं होता है, और जिसके मन से राग, भय और क्रोध निकल जाते हैं, ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि वाला कहलाता है और जो व्यक्ति शुभाशुभ दु:ख-सुखादि को प्राप्त करके अनासक्त रहता है, न सुखी होता है, न किसी से द्रेष करता, उसकी बुद्धि स्थिर रहती है। और इसके अतिरिक्त जिस प्रकार से कछुआ अपने अङ्गों को सिकोड़ करके अपने अङ्गों को छिपाये हुए रहता , उसी प्रकार जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियार्थों से हटाये रहता है, वह **स्थितप्रज्ञा** कहलाता है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन:।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।
यततोह्यापि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चित:।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मन:।।
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्पर:।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।
ध्यायतो विषयान्पुंस: सङ्गम्तेषुपजायते।
सङ्गात्संजायते काम: कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोह: सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम:।
स्मृतिभ्रं शाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।

देखो हे अर्जुन! यदि कोई व्यक्ति निराहार रहकर के तो उसके मन से विषय वासना अपने आप हट जाती है, क्योंकि— कष्टात-कष्टतरि क्षुधा:), भूख दु:ख से भी अधिक दुखदायी होती है। अत: ऐसी स्थिति के अन्दर वासना भोग का ख्याल मनुष्य से निकल जाता है, किन्तु भिर भी उसके मन में विषय सुख का ज्ञान तो बना ही रहता है। वह विषय सुख का ज्ञान परदर्शन अर्थात् आत्म साक्षात्कार होने के बाद ही हट पाता है। हे अर्जुन! बुद्धिमान पुरुष इन्द्रियों पर नियन्त्रण करेन का प्रयत्न तो पूरा-पूरा करते हैं, किन्तु इन्द्रियों का वेग अत्यन्त प्रबल होता है। बुद्धिमान पुरुष के मन को भी पीस डालता है एवं जबरदष्ती मन को हर लेता है। इसलिए उन सब इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके एवं योगयुक्त होकर जो व्यक्ति मत्परायण बन जाता है एवं इन्द्रियों पर पूर्णरूपेण वशीकार प्राप्त कर लेता है वह व्यक्ति ष्थितप्रज्ञ कहलाता है। देखो अर्जुन! मन का इतना प्रबल प्रवाह है कि यदि मनुष्य विषयों का चिन्तन भी करता है तो धीरे-धीरे उनमें लग ही जाता है। विषयों का संग हो जाने पर उसके मन में कामना पैदा हो जाता है और कामना पैदा हो जाने पर कदाचित् उसकी पूर्ति न हो तो मन में क्रोध पैदा हो जाता है और क्रोध पैदा होने पर मनुष्य विक्षिप्त भाव को प्राप्त होकर किंर्त्तव्य विमूढ़ बनकर मूढ़ जैसा बन जाता है, और ऐसी स्थिति में उसकी स्मृति जाती रहती है। एवं स्मृति नाश हो जाने पर बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, एवं बुद्धि के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर मनुष्य स्वयं ही नष्ट हो जाता है। अत: इन्द्रियों को इन्द्रियार्थों से हटाकर अनासक्त बुद्धि से विषयों के भीतर विचरता हुआ भी मनुष्य आत्मवशी होकर अन्त:करण की प्रसन्नता से मनुष्य आत्मसुख रूप परमसुख को प्राप्त कर ही लेता है।

प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।
इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञा वायुर्नावमिवाम्भसि।।
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।
या निशा सर्वभूतानां तस्या जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।
आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।

अर्थात् इसी प्रकार से आत्म प्रसाद प्राप्त हो जाने के बाद सब दुःखों की हानि हो जाती है, और प्रसन्नचित वाले ऐसे योगी की बुद्धि बहुत जल्दी ही स्थिर हो जाती है। जो मनुष्य योगा नहीं है, अयुक्त है उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती है और अयुक्त व्यक्ति की भावनायें भी शुद्ध नहीं रहती हैं। तथा जिसके अन्दर भावनायें शुद्ध नहीं हैं उसको शान्ति प्राप्त नहीं होती है और अशान्त व्यक्ति को सुख हो ही कहां सकता है? जो मनुष्य अपने मन को इन्द्रियों के पीछे लगाये रहता है, इन्द्रियां उसके मन को इस प्रकार हर लेती हैं जैसे कि समुद्र में पड़ी हुई नाव को वायु भगा ले जाती है। इन्द्रियां हमेशा इन्द्रियों के विषयों में आसक्त रहती हैं। इसलिए जो मनुष्य इन्द्रियों को इन्द्रियार्थों से निकाल लेता है उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित हो जाती है। हे अर्जुन! जो सारे प्राणियों की रात है उसमें संयमी मनुष्य जागता रहता है, अर्थात् सारे संसार वाले अन्तर्मुखी दुनियां में सोये रहते हैं, उनको अन्तजगत का कोई ज्ञान नहीं होता, उसमें योगी जागता रहा करता है, अर्थात् योग ध्यान परायण रहता है आन्तरिक आत्मिक दृश्यों को देखता रहता है, और जिन दुनियाबी काम-धन्धों के अन्दर संसारी लोग सचेत रहते हैं, उनमें सोया रहता है, अर्थात् अनासक्त रहता है। वह सांसारिक काम-धन्धों की ओर से अनासक्त रहता है, अर्थात् मुनि उनमें अपना कोई लगाव नहीं रखता है। वह केवल मात्र अपने निजी आत्म-स्वरूप में स्थित रहा करता है। हे अजुन! कभी भी पूर्ण न होने वाले समुद्र के अन्दर जिस प्रकार सभी नदी-नाले विलीन हो जाया करते हैं इसी प्रकार से सारी कामनायें जिस व्यक्ति के भीतर खत्म हो जाती हैं वह मनुष्य शान्ति को प्राप्त होता है, किन्तु कामनाओं के पीछे दौड़ने वाला व्यक्ति कभी भी शान्ति को प्राप्त नहीं होता है। प्रत्युत अशांत ही बना रहता है। इसलिए-

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममोनिरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।

जो मनुष्य सारी कामनाओं को छोड़कर ममता और अहंकार रहित होकर अनासक्त होकर विचरता है, वह शान्ति को प्राप्त कर लेता है। यह ब्राह्मी स्थिति है, इसको प्राप्त करके कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता है, और जो मनुष्य मृत्यु पर्यन्त इस स्थिति को बराबर बनाये रखता है, वह ब्रह्मलीनता को प्राप्त कर लेता है। इसलिए हे पुत्र! यह अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण का उपदेश है। तुम इसको अपने जीवन में पूरी तरह से घटाओ। यदि उपरोक्त उपदेश को अपने जीवन में घटित कर लोगे तो अवश्य ही तुम समाधिस्थ हो जाओगे। जिसके फलस्वरूप भव-बन्धनों से मुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त कर लोगे। उपरोक्त भगवान कृष्ण का उपदेश शान्ति प्राप्त कर लेने का एक सरलतम उपाय है। इसलिए प्रत्येक साधक को इन श्लोकों पर ध्यान देना चाहिए और अपन आपको शान्ति सुख की ओर बढ़ाना चाहिए।

इतने उपदेश के बाद योगाचार्य श्री तपोनिधि जी ने उपस्थित भक्तजनों को आह्लाद के साथ आशीर्वाद दिया और ऊँचे उच्चारण के साथ कहा-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाक्भवेत्।।

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी निरासक्त हों। सभी कल्याण ही कल्याण को देखें और संसार में कोई भी दुःखी न हो।

इसके पश्चात् समस्त भक्तजन व ब्रह्मचारीगण अपनी कुटियाओं को लौट गये और अपने-अपने नैत्यिक-नित्यकर्म में लग गये।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

फाल्गुन मास का पवित्र महीना था। होलियों के रंग-राग चारों ओर मनाये जा रहे थे। कालचक्र, जगत चक्र, युग चक्र के अधिनायक श्रीकृष्ण की ब्रज माधुरी को होली के पवित्र पदों में गाया जा रहा था। चारों ओर से आनन्द ही आनन्द दिखलाई दे रहा था। योगाचार्य श्री तपोनिधि जी के आश्रम में इधर-उधर से आने वाले सत्संगी भाई-बहिनों की बहुत भीड़ थी। सभी लोग उनके पवित्र उपदेश सुनने के लिए बहुत ही उत्सुक थे। धीरे-धीरे सत्संग का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। सत्संगी लोगों ने सुमधुर कण्ठ से गाना आरम्भ किया 'हम कब से आये हैं योगेश्वर तेरे द्वारे।' योगाचार्य श्री तपोनिधि जी अपने ध्यान में मग्न थे। अपने सत्संगी लोगों के सुमधुर संगीत को सुनकर योगाचार्य तपोनिधि जी की योग-निद्रा टूटी और दूर-दूर देशों से आये हुए अपने सत्संगी बच्चों को देखकर उन्होंने योग-उपदेश आरम्भ किया। श्री योगाचार्य जी ने कहा बेटा तुम सब योग जिज्ञासु हो। योगोपदेश के पवित्र सत्संग को सुनने के लिए तुम सभी लोग यहां आश्रम में आये हो। मुझे इसका बड़ा हर्ष है कि तुम लोगों के मन में पवित्र योग-जिज्ञासा भरी हुई है। यह कल्याणकारी भावना है। सकल लोकाधिनायक परम योगेश्वर स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि—

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते।

अर्थात् केवलमात्र जो व्यक्ति योग का जिज्ञासु बन जाता है। वह भी कर्मकाण्डियों के दायरे से बहुत आगे निकल जाता है, और वेद, यज्ञ, तप, दान आदि में जो पुण्य फल कहा है उसी सभी का उल् लंघन करके योगी परम आदि स्थान को प्राप्त हुआ करते हैं। इसीलिए तुम सबकी जिज्ञासा सराहनीय है। ये सब बातें हो जाने के बाद योगाचार्य श्री तपोनिधि जी ने अपना पवित्र योगोपदेश आरम्भ किया। योगोपदेश में अपने सत्संगियों को सम्बोधित करते हुए आदेश दिया कि देखो बेटा यह योग-विद्या परम महान विद्या है। इसको जानकर ही मनुष्य सर्वज्ञाता पा जाता है। श्री तपोनिधि जी उपदेश कर ही रहे थे, कि इतनी ही में उनके एक अधिकारी शिष्य कपिलदेव ने खड़े होकर प्रश्न किया कि हे प्रभो! आपने अपने उपदेश में यह आदेश प्रदान किया कि योगी सर्वज्ञाता बन जाता है। हे प्रभो! हमने तो अभी तक यही सुना है कि सर्वज्ञातृत्व शक्ति केवल मात्र ईश्वर में है और किसी में नहीं। कृपा कर मेरे इस संशय को हटाइये।

उत्तर : अपने बच्चे की पवित्र जिज्ञासा देखकर योगाचार्य जी ने उत्तर दिया, बेटा तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है अवश्य ही ईश्वर सर्वज्ञ है। ईश्वर में सर्वज्ञ बीज की पराकाष्ठा है। उससे बढ़कर कोई और सर्वज्ञ नहीं होता है। किन्तु उसमें लयता प्राप्त करने वाले योगी भी अवश्य सर्वज्ञ बन जाया करते हैं। बेटा हमने तुम्हें योगोपदेश किया था और पातञ्जलि योगदर्शन पढ़ाया था, क्या तुम भूल गये? उसमें लिखा है—

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्।

इस पर व्यास भाष्य पढ़ो-

यदिदमतीतानगतप्रत्युत्पन्नप्रत्येकसमुच्चयातीन्द्रियग्रहणाल्पं वहिति सर्वज्ञ बीजम्, एतद्धि वर्धमानं यत्र निरतिशयं स सर्वज्ञः, अस्ति काष्ठाप्राप्तिः सर्वज्ञ बीजस्य सातिशयत्वात् परिमाणवदिति, यत्र काष्ठाप्राप्तिर्ज्ञानस्य स सर्वज्ञः स च पुरुषविशेष इति, सामान्यमात्रोप संहारे कृपोपक्षयमनुमानं न विशेषप्रतिपत्तौ समर्थमिति तस्य संज्ञाऽऽदिविशेष प्रतिपतिरागमतः पर्य्यन्वेष्या, तस्यात्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनं, ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्प-सेलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामीति, तथा चोक्तम् — 'आदिविद्वाननिर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद्भगवान परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच' इति।

अर्थात् अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न प्रत्येक समुच्चय अतीन्द्रिय ज्ञान सर्वज्ञ बीज कहलाता है, और यह बढ़ता हुआ जहां पराकाष्ठा को पहुँच जाता है वही सर्वज्ञ कहलाता है। सर्वज बीज का अति शयाक्रान्त होने से पुरुष विशेष ईश्वर सर्वज्ञ कहलाता है। क्योंकि अनुमान जो है सामान्य अर्थ का प्रतिपादक होता है, विशेष प्रति पत्ति में

समर्थ नहीं होता है। विशेष प्रतिपत्ति वेदों से ही जाननी चाहिए। ईश्वर का संसार के कार्यों में अपना कोई प्रयोजन नहीं है। भूतानुग्रह ही ईश्वर का प्रयोजन है। क्योंकि ईश्वर यह चाहता है कि मैं ज्ञानधर्मोपदेश के द्वारा कल्प एवं महाप्रलयादि में भी संसारी मनुष्यों का उद्धार करूँगा। पुरुषों का उद्धार करूँगा। इसीलिए कहा गया है कि आदि विद्वान, आदि गुरु परमेश्वर हिरण्यगर्भ ने निर्माण चित्त का आश्रय लेकर जिज्ञासु आसुरी को तन्त्र का उपदेश किया। इसलिए हे पुत्र, ईश्वर परम सर्वज्ञ है, किन्तु उसका ध्यान करने वाले योगीजन भी समाधि बल से सर्वज्ञ बन जाते हैं। यही योगविद्या की बहुत बड़ी महानता है।

प्रश्न : आचार्य तपोनिधि जी के उपदेश को सुनकर उनके जिज्ञासु बालक ने प्रश्न किया कि हे प्रभो! यह तो ठीक है कि योग विद्या परम महान है किन्तु मैं तो योग के सही अर्थ को भी वस्तुत: नहीं समझता हूँ। योग है क्या? इसका उपदेश मुझे कृपाकर कहिये, और समाधि किसको कहते हैं, अऔर उसके कितने भेद होते हैं? उसका सब भेद कृपाकर मुझे समझाइये। ताकि मैं भी योग समाधि का अधिकारी बन जाऊँ।

उत्तर : हे पुत्र! सुनो हम तुम्हें समझाते हैं कि योग किसे कहते हैं, और समाधि का क्या अर्थ है, एवं उसके कितने भेद हैं? और चित्त की कौन-सी भूमिका में योग की वर्णाक्षरी प्रारम्भ होती है। यही सभी कुछ अब आगे के उपदेश में तुम्हें समझाते हैं। सुनो— योग शब्द का अर्थ इतना व्यापक एवं महत्वशाली है कि सभी सिद्धान्तवादियों ने उसको अपने हृदय से अपनाया है। भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग, कर्मयोग, लययोग, हठयोग, शून्य योग आदि-आदि ये सभी शब्द इसकी व्यापकता के परिचायक हैं। इस संसार में जन्म लेने वाला प्राणी कोई भी ऐसा नहीं होगा, जिसको योग की सच्ची जिज्ञासा न हो, किन्तु ''मुण्डे, मुण्डे मतिर्भिन्ना'' के नियमानुसार हर एक व्यक्ति ने इसको अपनी मति के अनुसार प्रयोग किया। जो लोग हृदय प्रधान हैं और ईश्वर की अर्चना, वन्दना आदि के रूप में लक्ष्य प्राप्ति के लिए संलग्न हैं, उन्होंने इसको भक्तियोग तथा जो लोग ज्ञाननिष्ठा प्रधान हैं, वे महावाक्यों का मनन करते हुए ही वेदान्त सिद्धान्तों के अनुसार आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील हैं, उन्होंने ज्ञानयोग, इसी प्रकार जो ईश्वरार्पित बुद्धि से निष्काम भाव से कर्म करते हुए, कर्मबन्धन से छूटकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्होंने इसे कर्मयोग नाम से अपनाया। इसके अतिरिक्त योग के व्यापक प्रभाव और महानता को देखकर कुछ दम्भी लोगों ने भी इस शब्द को अपनाकर यक्षिणी, पिशाचिनी, आदि छोटी-छोटी तामस, राजस शक्तियों की आराधना कर सिद्धियों को पाकर संसार के भोले भाले व्यक्तियों को चत्मकार में डालकर अपनी दाम्भिक पूजा कराई और अपने को योगो सिद्ध किया। इसके अतिरिक्त जिन्होंने हरेक योग के कुछ साधनों को कहीं से सीख लिया, उन्होंने योगाश्रम कायम कर लिए और केवल मात्र नेति धौति, आदि षट्कर्म व आसन बन्ध मुद्राओं के द्वारा शारीरिक साधनायें ही उन लोगों का परम लक्ष्य बन गया। इसी प्रकार से बिना अष्टांग योग की साधना के ही किन्हीं लोगों ने भू-गर्भ, जल-गर्भ आदि समाधियाँ लगाकर योग के व्यापक शब्द से लाभ उठाया। यह सब योग का वास्तविक अर्थ न समझकर या समझकर भी उसकी लापरवाही के कारण हुआ।

वस्तुत: ठीक प्रकार से विचार कर देखा जाय तो योग शब्द का अर्थ है मिलाने वाली क्रिया। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार युज् धातु स सन्धानाथ शब्द का प्रयोग होता है। जिसका अर्थ है मिलना। युज् समाधौ से योग का अर्थ है समाधि। योगाचार्य भगवान श्री पातञ्जलि जी ने 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:' कह कर योग शब्द की अभिव्यक्ति की। निरोध शब्द का अर्थ हमारी शास्त्रीय परिभाषा में निरोध: समाधि से व इसी प्रकार योग शब्द का अर्थ योग, समाधि आदि वचननों से समाधि ही सिद्ध होता है। समाधि शब्द का अर्थ उपनिषदों में 'समाधि समतावस्था जीवात्म: परमात्मन:' से जीवात्मा व परमात्मा की समतावस्था का नाम ही है। किन्तु 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध:' इस सूत्र में केवल मात्र चित्तवृत्ति निरोध को योग कहा है। न कि 'सर्व चित्त वृत्ति निरोध:' को योग कहा है। क्योंकि इस सूत्र में सर्व शब्द का ग्रहण नहीं है। इसलिए योग की सम्प्रज्ञात व असम्प्रज्ञात दोनों अवस्थाओं का नाम योग शब्द वाच्य है। इसी कारण से 'वितर्क विचारानन्दास्मितानुगमात् सम्प्रज्ञात:' कह कर सम्प्रज्ञात योग व 'विराम प्रत्ययाभ्यासपूर्व: संस्कारशेषोन्य:' कह कर असम्प्रज्ञात योग का कथन किया गया है। सम्प्रज्ञात समाधि को दूसरे शब्दों में एकाग्रावस्था व निरोधावस्था कहना चाहिए। सारे संसार के प्राणियों के चित्त पाँच अवस्थाओं में विभक्त रहा करते हैं :—

(१) मूढ़ावस्था के प्राणी—

जिनमें तमोगुण प्रधान रहता है, तथा रज और सत्व गौण हो जाया करते हैं। इस अवस्था के चित्त वालों की प्रवृत्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से आवृत्त रहा करती हैं और वे आलस्य तन्द्रा में घिरे रहते हैं किसी भी प्रकार उनकी उदर पूर्ति होती रहे। इसके अतिरिक्त किसी के हिताहित लोक-परलोक से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(२) क्षिप्तावस्था के प्राणी—

जिनमें रजोगुण प्रधान रहता है। तमोगुण व सतोगुण गौण रहने के कारण इनके मन में चञ्चलता, दु:ख-शोक, चिन्तायें बनी रहती हैं। लौकिक साधना ही उनका परम लक्ष्य रहता है, साँसारिक कार्य धन्धे (बिजनिस) व्यापार के अतिरिक्त परलोक आदि में इनकी आस्था नहीं होती है।

(३) विक्षिप्तावस्था के प्राणी—

जिनमें सतोगुण प्रधान रहता है, रजोगुण और तमोगुण गौण होता है। इनके मन में पूर्ण प्रसन्नता, दक्षा, दया, परोपकार की भावना और साधनों में संलग्नता, ज्ञान, धर्म और वैराग्य में पूरी-पूरी अभिरुचि रहती है, इनका मन थोड़ा-थोड़ा एकाग्रता की ओर चलता है तथा शान्त रहता है। ये लोग स्वाध्याय, संकीर्तन, उपासनायें आदि करते हैं, किन्तु एकाग्रता के बिना इस भूमिका के प्राणी भी योग श्रेणी के नहीं माने जाते हैं।

(४) एकाग्रावस्था के प्राणी—

जिनमें सतोगुण प्रधान रहता है, रजोगुण और तमोगुण वृत्ति मात्र में शेष रहते हैं। इनका मन 'दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञावैराग्यम्' होकर अपर वैराग्य को प्राप्त होता है। मनुष्य का मन बहुत बड़ा अद्भुत और शक्तिशाली है। वस्तुत: विचार कर देखा जाय तो प्रभु की सृष्टि के बड़े-बड़े अद्भुत कार्य मन की एकाग्रता से ही सम्पन्न होते हैं।

(५) निरोधावस्था के प्राणी—

जिनमें बाहार से गुणों का परिणाम बन्द होकर चित्त सत्व में निरोध परिणाम संस्कार मात्र से शेष रह जाता है। ऊपर वर्णन की हुई पांचों प्रकार की अवस्थाओं में केवल मात्र एकाग्रावस्था व निरोधावस्था को ही योग श्रेणी में लिया है। संसार का कोई भी प्राणी किसी भी प्रकार की साधनायें करता है, जब तक मन में एकाग्रता का उदय नहीं होता तब तक उसका योग में प्रवेश नहीं माना जा सकता। भगवान पतञ्जलि जी ने—

यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार,

धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।

कहकर अष्टाङ्ग योग का वर्णन किया। अङ्ग, अङ्गी से अलग नहीं होते इस विचार से अष्टाङ्ग योग के किसी भी एक अङ्ग का पालन करने वाला भी योग का विद्यार्थी तो है ही।

उनमें से यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पांच अङ्ग धारणा, ध्यान एवं समाधि की अपेक्षा बहिरंग है और धारणा ध्यान, सम्प्रज्ञात समाधि, असंप्रज्ञात समाधि की अपेक्षा बहिरंग हैं। भगवान पतञ्जलि जी के शब्दों में किसी एक में चित्त को बांधना धारणा कहलाती है—

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

धारणा से ही सम्प्रज्ञात योग का श्रीगणेश होता है। धारणा सिद्ध हो जाने पर मन के अन्दर योग प्रवेश की योग्यता हो जाती है। धारणा की सिद्धि से प्राप्त हुई योग्यता वाला मन, जिसकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो चुकी है, सम्प्रज्ञात योग का अधिकारी बनता है। सम्प्रज्ञात योग का अधिकारी व अभ्यासी योगी अपने प्रथम अभ्यास में वितर्कानुगत योग का अभ्यास करता है। जिसमें वह आकाश, वायु अग्नि, जल, पृथ्वी इन पांच महाभूतों का तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनके गुणों को प्रत्यक्ष करता है। इस वितर्कानुगत योग में पञ्च-भूत और पञ्चभूतों से होने वाले सब विस्तार का और इनके सब विषयो को पूर्ण प्रत्यक्ष करता हुआ साधक अपने अभ्यास में पृथ्वी तत्व में पहाड़, सुरम्य वन, उपवन और नाना प्रकार की दिव्य सुगन्धों को अनुभव करता है। जल तत्व में महान नाना प्रकार के समुद्र एवं दिव्य रसों का अनुभव करता है, अग्नि तत्व में अनेक विधि ज्वालाओं और महान दिव्य रूपों का अनुभव करता है, वायु तत्व में दिव्य स्पर्शों का अनुभव करता है, और आकाश तत्व में शून्य आकाश और आकाश में उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के शब्दों को सुनता है। इस वितर्कानुगत योग में सवितर्क और निर्वितर्क दो अलग-अलग भेद हैं। उसमें सवितर्क समाधि—

तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पै: संकीर्णा सवितर्का समापत्ति:।

अर्थात् वितर्कानुगत समाधि में शब्द, अर्थ और उसका ज्ञान मिला हुआ सा होने पर बराबर अलग-अलग भाषित होते रहें वह सवितर्क समाधि कहलाती है। इसका अभ्यास करते-करते चित्त ध्येयाकार हो जाये। शब्द, अर्थ, ज्ञान न रहे तब वह निर्वितर्क समाधि कहलाती है। इस विषय को इस प्रकार समझ लेना चाहिए- जैसे साधक को इस प्रकार समझ लेना चाहिए- जैसे साधक के ध्यान में एक गाय है और लम्बे गले वाली, दो सींगों वाली सफेद रङ्ग, चार पैरों वाली गाय एक पशु है, और उस गाय के मन में ज्ञान होना कि वह एक गाय है यही ज्ञान है, यह तीनों शब्द अर्थ और ज्ञान एक विषयक होते हुए भी अलग-अलग समझ में आते रहें ऐसी स्थिति का नाम सवितर्क समाधि है।

जिसमें साधक का मन ध्येयाकार बन जाय, शब्द अर्थ और ज्ञान अलग-अलग अनुभव में न आकर अर्थ मात्र ही भासित होता रहे वह निर्वितर्क समाधि है।

स्मृति परिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थ मात्र निर्भासा निर्वितर्का।

विचारानुगत योग—

निर्वितर्क समाधि की पराकाष्ठा में पहुँच जाने के बाद मनुष्य का मन सूक्ष्म विषयों में प्रवेश करता है। अभी तक वितर्कानुगत योग में उसने स्थूल महाभूतों का और उनके विषयों को प्रत्यक्ष किया था। किन्तु अब विचारानुगत योग में महाभूतों की अपेक्षा उनसे सूक्ष्म तन्मात्र का प्रत्यक्ष करना है। जैसे वितर्कानुगत समाधि में स्थूल महाभूत आकाश व उसके गुण शब्द का अनुभव किया था। अब विचारानुगत में सूक्ष्म आकाश या शब्द तन्मात्र का अनुभव करेगा। इसी प्रकार वायु में सूक्ष्म वायु तत्व यानी स्पर्श तन्मात्र, अग्नि में सूक्ष्म अग्नि तत्व या रूप तन्मात्र, जल में सूक्ष्म जल तत्व या रस तन्मात्र, पृथ्वी में सूक्ष्म पृथ्वी तस्व या गंध तन्मात्र का अनुभव करेगा। इसके साथ-साथ दस इन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार को प्रत्यक्ष करेगा। इसी प्रकार इन सूक्ष्म विषयों में होने वाली समाधि का नाम सविचार समाधि है। जिस प्रकार वितर्कानु समाधि के सवितर्क और निर्वितर्क दो भेद हैं। इसी प्रकार विचारानुगत समाधि में सविचार और निर्विचार दो भेद हैं। सूक्ष्म विषय की सीमा प्रधान अलिङ्ग तक है।

सूक्ष्म विषयत्व चार्लिङ्ग पर्यवसानम्।

जैसे हमने किसी भी तन्मात्र का सूक्ष्म ध्यान आरम्भ किया। उसका अनुभव, देश, काल व निमित्त से सीमित अनुभव होता रहे व ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों अलग-अलग भाषित होते रहें, इसका नाम सविचार समाधि है। जिस समाधि में ध्येय विषय, देश, काल निमित्त से सीमित न दिखलाई दे तो वह निर्विचार समाधि कहलायेगी। इस विराचानुगत योग में मनुष्य प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयवों को पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है। और सूक्ष्मता की परिधि को पहुँच जाता। क्योंकि योगी इसमें सूक्ष्म मन का, सूक्ष्म इन्द्रियों का, सूक्ष्म बुद्धि और अहंकार का पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है। इसलिए इसमें दैविक शक्तियों का विकास हो जाता है। इस स्थिति के योगी को दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, दूर स्पर्श, आदि स्वतः ही होने लगता है। इसके साथ-साथ सूक्ष्म देव लोकादि भी अनुभव में आने लगते हैं और उन सब मायिक स्थानीय, देवताओं को देखकर भी योगी अपने आपको इन सबसे उत्कृष्ट देखता है। बुद्धि के आमोद-प्रमोद आह्लादादि सूक्ष्म विषयों को प्रत्यक्ष करता है। ऐसी स्थिति में देव लोग अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। उस समय योगी को बहुत सचेत होकर रहने की आवश्यकता है। भगवान पतञ्जलि जी की आज्ञा है कि –

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात-

ये चारों प्रकार की समाधियां सबीज कहलाती हैं। यहां तक संसार का बीज बना रहता है। मनुष्य संसार से परे नहीं हो पाता, इसलिए स्थूलार्थ में सवितर्क और निर्वितर्क और सूक्ष्मार्थ में सविचार और निर्विचार समाधियाँ सबीज हैं। किन्तु निर्विचार समाधि ज्यों-ज्यों बढ़ती है त्यों-त्यों उसकी स्थिति निर्मल बनती चली जाती है। पुरुष को प्रकृति पर्यन्त सब सूक्ष्म पदार्थ शीशे की तरह चमकते हुए दिखाई देने लगते हैं तब—

निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः।

निर्विचार समाधि की निर्मलता में योगी को स्फुट-प्रज्ञालोक होता है।

काफी देर के सत्संग के पश्चात् योगाचार्य श्री तपोनिधि जी ने सत्संग को विश्राम दिया और अपनी शिष्य मण्डली को आदेश दिया कि वे लोग अपनी-अपनी कुटियों में जाकर नित्य-नैमित्यिक कर्म करते हुए अपने साधनाक्रम को चलायें।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

योगाचार्य श्री तपोनिधि जी का दिव्य आश्रम है। आश्रम में प्रवेश करते ही मालूम पड़ता है यह दिव्य देवलोक बैकुण्ठ है। चारों ओर पक्षी कलरव कर रहे हैं। वर्षा ऋतु शांत हो चुकी है। शनैः-शनैः शरद ऋतु ने अपना प्रवेश आरम्भ कर दिया है। वृक्षों पर नितांत हरियाली है। कदली वन के हरे-हरे सुमनोहर पत्ते अपनी अनुपम शोभा दिखा रहे हैं। कहीं-कहीं पर झुकी हुई कदलियें यह सूचना दे रही हैं कि वे सुन्दर मधुर फल वाली हैं। दर्शकगण बढ़कर देखते हैं तो झुकी हुई कदलियें सभी फलवती हैं। उनके ऊपर सुमधुर और सुन्दर फल सुशोभित हो रहे हैं और उन फलों के भार से कदलियों का झुक जाना उनकी स्वाभाविकता को दिखला रहा है। चतुर्मास के बाद में मालूम पड़ता है। वृक्षों की सघनता ने कुञ्जवन तैयार कर दिये हैं। अशोक के वृक्ष फले-फूले बिल्कुल अशोकता का परिचय दे रहे हैं। हरि शृंगार के पवित्र पुष्प चारों ओर फैल फैल करके अपनी सुगन्ध से आश्रम की अनुपम शोभा बढ़ा रहे हैं। कदम वृक्षों की सघन पत्रावली ने स्वाभाविक रूप से दिव्य कुञ्ज निकुञ्जनों के भवन से तैयार कर दिये हैं जिनकी छत्र छाया में आश्रमवासी ब्रह्मचारी गण अपने-अपने ध्यानाभ्यास में लगे हैं। आसन क्लासें चल रही हैं। कहीं-कहीं टाटाम्बरधारी, लम्बी-लम्बी जटाओं वाले महात्माओं के दर्शन हो रहे हैं। शनैः-शनैः दर्शकगणों की भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। वे लोग अपने गुरुदेव के दर्शनों की अभिलाषा में बैठे हुए संकीतन कर रहे हैं और गा रहे हैं-

हम कब से आये हैं योगेश्वर तेरे द्वारे,
तेरे दरशकी है अभिलाषा बैठे आस लगाये।
जीवन-ज्योति जगा दो प्रभुजी तेरी शरण में आये।
सुना है कितने पापी की तू नैया पार लगाये
मांग रहे हैं हे योगेश्वर दोनों कर फैलाये।।
हम कब से .... (१)

तेरे पद की रजको सिर पर बारम्बार चढ़ायें,
हे लोकेश्वर, अखिलेश्वर खाली हाथ न जायें।
दिल में जो अरमान भरे हैं योगिराज हम पायें
सिद्धों के सरताज प्रभु हम तेरे ही गुण गायें।।
हम कबसे .... (२)

परमपिता परमेश्वरप्रभु हमरी नैयापार लगओ,
तेरी छटा निराली प्रभुजी आकेदरश दिखाओ।
हम अनाथों को हे सिद्धेश्वर अपने दास बनाओ।
दासकृपा भटकट है दर-दर उर में जोत जलाओ।।
हम कबसे .... (३)

धीरे-धीरे सत्संगियों का समूह चारों ओर से आश्रम में भर उठा। श्री योगाचार्य जी की जय, श्री सद्गुरुदेव जी की जय की ध्वनियों से आकाश तल निनादित हो उठा। अपने भक्तों की भीड़ को देखकर व उनकी संकीर्तन ध्वनियों को सुनकर श्री योगाचार्य जी अपनी पर्णकुटी से बाहर आये व सत्संग मञ्च पर आसनासीन होकर उन्होंने अपना उपदेश आरम्भ किया। अपने आसन पर बैठे हुए श्री योगाचार्य जी तेजपूर्ण और कितने सुन्दर दिखाई दे रहे थे जिसकी कुछ कल्पना नहीं की जा सकती मालूम पड़ता था देवसभा में स्वयं वृहस्पति विराजमान हों। योगाचार्य जी ने अपना उपदेश आरम्भ किया। उन्होंने कहा भाई! तुम लोगों की पवित्र योग-जिज्ञासा को देखकर मेरा मन बहुत ही आह्लादित हो रहा है मालूम पड़ता है कि तुम्हारी योग-जिज्ञासा बिल्कुल सच्ची है और तुम योग-सिद्धान्तों को पूरी तरह अपने हृदय में अपना लेना चाहते हो ठीक है। यही कल्याण का आदि स्रोत है। जिसको प्राप्त करने पर ऋषि मनि तपस्वी सभी कृतार्थ हो गये एवं संसार के बन्धनों को काटकर परम परमार्थ को प्राप्त किया। जिज्ञासु मनुष्य इस विद्या को ही प्राप्त करके परम श्रेय भागी बन जाया करता है और उसका दर्जा तथा स्थान विभिन्न प्रकार की साधना करने वाले साधकों से उत्कृष्ट से हुआ करता है। गीता में स्वयं श्री भगवान कृष्ण ने इस बात को स्वीकार किया है कि योग ही सर्वोत्कृष्ट विद्या है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुखारविन्द से निम्नांकित श्लोकों में योग की उत्कृष्टता बतलाई है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मातेऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

अर्थात् हे अर्जुन योगी का स्थान तपस्वियों से, ज्ञानियों से एवं कर्मकाण्डियों से सभी से ऊँचा है इसलिए तुम योगी

बनो। क्योंकि—

वेदेषु यज्ञेषु तपः सु चैव दानेषुयत् पुण्यफलंप्रदिष्टम्। अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परमस्थानमुपैति चाद्यम्।।

अर्थात् वेद में, यज्ञ में, दान में, तप में जो भी पुण्य फल कहा गया है योगी उस सबका उल्लंघन करके आदि परम स्थान को प्राप्त हुआ करता है इसीलिए तुम सबको योग-विद्या की ही शरण लेनी चाहिए। क्योंकि भगवान शिव का भी आदेश इसी प्रकार का है—

ज्ञानरक्तो विरक्तो वा धर्मज्ञोपि विजितेन्द्रियः। विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभेत द्विधे।।

अर्थात् चाहे कोई ज्ञानी हो या विरक्त हो धर्मात्मा हो या विजितेन्द्रिय हो बिना योग के मुक्ति को प्राप्त नहीं होता। श्री योगाचार्य जी के इस पवित्र योग-उपदेश को सुनकर धर्मदत्त नाम के एक योग-जिज्ञासु ने खड़े होकर प्रश्न किया— हे गुरुदेव! जो लोग अन्यान्य उपासनायें करते रहते हैं या ब्रह्मवाद का मनन करते रहते हैं वे लोग तो योगी नहीं होते क्या उनकी उपासनायें व्यर्थ ही जाती हैं या कुछ फल मिलता है? कृपा करके यह बात मुझे समझाइये। कहीं ऐसा तो नहीं होता कि उनका पुरुषार्थ व्यर्थ चला जाता हो।

उत्तर : नहीं, नहीं, पुत्र ऐसी बात नहीं है वे लोग शनैः-शनैः अपनी-अपनी उपासनायें करते हुए योग मार्ग की ओर बढ़ जाया करते हैं। योग-शिखोपनिषद् में भगवान शंकर ने इस बात का भी निर्णय स्पष्ट में दे दिया है—

कि, इदृश्न्तु भवेत् दद् यद् तत् तत् भुक्त्वा ज्ञानी पुनर्भवेत पश्चात् पुण्येन लभ्यते सिद्धेन सह सगतिं ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा ततो नस्यति संसारोयं नान्यथा शिव भापितम्।

अर्थात् अन्यान्य उपासनाओं तथा वेदान्त धारणाओं में प्रयत्न करता हुआ साधक अपने पुण्य को बढ़ाता रहता है जब उसके पुण्य का खजाना परिपूर्ण हो जाता है तब उसको उस पुण्य के फलस्वरूप पूर्ण सिद्धयोगी गुरु की संगति प्राप्त होती है और वह योगी बन जाता है। तभी उसका संसार चक्र नष्ट हो जाता है। इसलिए 'मुण्डे मुण्डे मुतिर्भिन्ना' के नियमानुसार साधक अपनी-अपनी मति के अनुसार विभिन्न मार्गों से प्रयत्न तो करते रहते हैं किन्त निःश्रेयस सिद्धि तो केवल मात्र योग से ही कर पाते हैं।

प्रश्न : हे गुरुदेव हम सभी का पूर्णरूपेण भला हो जाये इसलिए इस कल्याणकारिणी, पवित्र योग-विद्या का जो आपने पहले उपदेश किया था उसे विस्तार से समझाने की कृपा कीजिये?

उत्तर : हे पुत्र! हमने पिछली बार तुम्हें वितर्कानुगत और विचारानुगत योग के बारे में समझाने का प्रयत्न किया था। विचारानुगत योग की निर्विचार समाधि की स्थिति में रोगी सब चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है।

तथा—

प्रज्ञा प्रसादमरुध्या शोच्यः शोचतो जनान। भूमिष्ठानिव शैलस्यः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् इस स्थिति में योगी सब चिन्ताओं से रहित होकर सांसारिक प्रवाह में बहते हुए प्राणियों को इस प्रकार देखता है जिस प्रकार पहाड़ पर खड़े होकर मनुष्य जमीन वालों को देखता है इस स्थिति में समाधिस्थ योगी को-

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञाः।

ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है उस समय योगी जो कुछ देखता है सत्य देखता है। इस बुद्धि का विषय श्रुत और अनुमान से बहुत आगे का होता है इसके संस्कार अन्य संस्कारों को रोक देते हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धि के आमोद-प्रमोद आल्हादादि विषयों में ज्योंही योगी संयम करता है त्योंही अपने आपको आनन्दमय देखने लगता है यही सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरी स्थिति आनन्दानुगत की है। इसी प्रकार पुरुष की दृग शक्ति और बुद्धि की दर्शन शक्ति जब एक रूप में भाषित होती है और उसमें योगी संयम करता है तब वह अस्मितानुगत योग को प्राप्त होता है। इस अस्मितानुगत योग में पुरुष को दृग शक्ति और बुद्धि की दर्शन-शक्ति क्योंकि एकाकार भाषित होती हैं इसलिए इसको जड़ चेतन की गांठ कहा गया है। विवेक-ख्याति के द्वारा ही स्फुट-प्रज्ञालोक हो जाने के बाद विवेक-ख्याति से ही जड़-चेतन की गांठ खुल जाती है और ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा अन्य संस्कारों का प्रतिरोध होने के बाद योगी निर्बीज समाधि को प्राप्त करता है। यही परम पुरुषार्थ है।

प्रश्न : योगाचार्य जी के उपदेश को सुनकर उनके जिज्ञासु बालक ने प्रश्न किया कि हे प्रभो! निर्बीज समाधि को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को किन-किन उपायों का अवलम्ब लेना पड़ता है।

उत्तर : हे वत्स! इसके विषय में यद्यपि शास्त्रों के बहुत से मत हैं, जिनके विषय में हम आगे चल करके वर्णन करेंगे, किन्तु भगवान पतञ्जलि जी ने इस विषय में दो सूत्रों की रचना की जिसमें पहला—

(1) भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्।

(2) श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

इस सूत्र के अनुसार संसार में जन्म लेने वाले प्राणियों को इस योग की प्रतीति दो ही प्रकार से होती है उनमें

(१) पहले प्राणी वे हैं जो अपने जन्म-जन्मान्तरों के अभ्यास से सम्प्रज्ञात योग की वितर्क और विचारानुगत समाधि में पूर्णतः प्रविष्ट हो चुके हैं और बाद में अभी निर्बीज समाधि तक नहीं पहुँच पाये थे अभी उनको विवेक-ख्याति नहीं हुई थी। इतनी अवस्था में ही उनका देहपात हो गया, ऐसे योगी दो प्रकार के होते हैं उनमें से एक हैं- (१) विदेह, दूसरे (२) प्रकृतिलीन।

(१) विदेह- वे कहलाते हैं, जो वितर्क समाधि द्वारा स्थूल महाभूतों का और उनके विशेषों का पूर्ण साक्षात्कार कर चुके हैं इसलिए वे शरीर की असलियत को समझकर के देहाभिमान से शून्य हो चुके हैं और इतनी साधना के बाद उनका शरीर छूट गया और वे सम्प्रज्ञात योग की आगे की सीढ़ियों तक नहीं पहुँच सके। अतः वे लोग विदेह कहलाते हैं और देदकोटि में माने जाते हैं दूसरे प्राणी-

(२) प्रकृतिलीन- वे योगी हैं जो स्थूल महाभूतों और उनके गुणों का पूर्ण साक्षात्कार करते हुए निर्विचार समाधि में पञ्च तन्मात्र अहंकार और महत्तत्व और प्रकृति का साक्षात्कार करते हुए इन्हीं में लीन रहे हैं और आगे की भूमिका को तय नहीं कर पाये अचानक देहपात हो गया, इसलिए ये लोग प्रकृतिलीन कहलाते हैं।

काफी देर के सत्संग पश्चात् योगाचार्य व श्री तपोनिधि जी ने सत्संग को विश्राम दिया और अपनी शिष्य मण्डली को आदेश दिया कि वे अपनी-अपनी कुटियों में जाकर नित्य नैमित्यिक कर्म करते हुए अपने साधनाक्रम को चलावें।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

प्रश्न : परम पूज्य गुरुदेव! कृपा करके यह बतलाइये कि- योग के कितने प्रकार हैं और उनमें से कौनसा श्रेष्ठ है?

उत्तर : प्रिय वत्स! अधिकारी भेद से योग चार प्रकार का होता है- हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग और लययोग। इनमें जो जिसका अधिकारी हो उसके लिये वही साधना श्रेष्ठ है। मन्त्रयोग इन सबमें सरल है। इसकी साधना योग के उत्तम, मध्यम और अधम तीनों श्रेणी के साधक कर सकते हैं। अत: इसी का दूसरा नाम सहजयोग भी है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! हठयोग किसे कहते हैं? और उसका अधिकारी कौन होता है?

उत्तर : हे पुत्र! सुनो ध्यानाभ्यास एवं मन्त्रजाप की सहायता से मन पर संयम करते हुए समाधि प्राप्ति करना राजयोग कहलाता है किन्तु बलपूर्वक प्राणों पर संयम करना हठयोग कहलाता है। हठयोग का अधिकारी कौन हो सकता है, इस सम्बन्ध में भगवान सदाशिव ने 'शिव संहिता' में कहा है :—

जो व्यक्ति अत्यन्त वीर्यवान हो, धैर्यवान हो, उत्साह सम्पन्न हो, परम वैराग्यवान एवं संयमी हो वही व्यक्ति हठयोग का अधिकारी है। ऐसे व्यति को ही हठयोग में प्रवेश करना चाहिए और गुरुदेव के मार्ग दर्शन में ही अपना अभ्यास करना चाहिए। जो व्यक्ति दूसरों की देखादेखी स्वयं ही हठयोग का अभ्यास आरम्भ कर देता है उसे किसी प्रकार शरीर रोगों का घर बन जाता है और वह शीघ्र ही काल का ग्रास बन जाता है।

प्रश्न : हे गुरुदेव ! हठयोग के सम्बन्ध में कुछ लोगों का मत है कि- इस विद्या को गुप्त रखना चाहिए। किसी के आगे प्रकट नहीं करना चाहिये, इसका क्या अभिप्राय है? ऐसा करने से तो यह विद्या ही लुप्त हो जायेगी, कोई भी इससे लाभ नहीं उठा पायेगा।

उत्तर : हां पुत्र! बात कुछ ऐसी ही है। शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है :

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रपत्नत:।
दत्ते च सिद्धहानि: स्यात्तस्माद्यत्नेन गोपयेद्।।

इसका अर्थ है कि- हठयोग का उपदेश हर व्यक्ति को नहीं देना चाहिए। क्योंकि अनधिकारी को दी हुई विद्या ऊसर भूमि में बोये हुए बीज के समान निरर्थक सिद्ध होती है। अत: पात्रता को देखकर ही हठयोग का उपदेश करना चाहिए। इसी प्रकार शिष्य को भी चाहिए कि- वह अपनी साधना को गुप्त रखे।

हमारे योगाचार्यो का आदेश है :-

हठविद्या परागोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता।
भवेद्वीर्यवतीं गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता।।

जिस प्रकार सहजयोग का अभ्यासी अपने संयम नियमादि का पूर्णरूपेण पालन करता है इसी प्रकार हठयोग के अभ्यासी को अपनी साधना गुप्त रखनी चाहिए। गुप्तरूप से की हुई साधना बल देने वाली होती है किन्तु जो व्यक्ति मान-प्रतिष्ठा के लिये या धनप्राप्ति के लिये इसका प्रदर्शन करते रहते हैं वे अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते। उनका योग सिद्ध नहीं होता।

यही कारण है कि- अनुभवी गुरुदेव शिष्य की योग्यता देखकर ही उसे हठयोग की विविध क्रियाओं में से किन्हीं एक-दो का उपदेश कर दिया करते हैं। वहीं एक-दो क्रियायें ही उसे कालान्तर में योगारूढ़ कर देती हैं।

प्रश्न : प्रभो! मुझे अबोध बालक को यह भी बतलाने की कृपा कीजिये कि- हठयोग की विविध क्रियायें कौन-कौन सी हैं और उनसे क्या-क्या लाभ हैं?

उत्तर : हे पुत्र! अष्टाङ्गयोग के सिद्धान्तानुसार प्रत्येक योगाभ्यासी को यम-नियमों का पालन तो करना ही चाहिए। इसके साथ साथ शरीर शोधन के लिये नेती, धौती, वस्ती आदि षटकर्मो का तथा नाड़ीशुद्धि के लिये योगासनों का अभ्यास करना चाहिए। आसनों में भी पश्चिमोत्तान, सर्वाङ्गासन, शीर्षासन, वज्रासन, पद्मासन एवं सिद्धासन शारीरिक आरोग्य, ऊर्ध्वरेतसता एवं कुण्डलिनी जागरण में विशेष रूप से सहायक होते हैं। किन्तु अपने शरीर के बलाबल एवं प्रकृति को देखते हुये ही आसनों का अभ्यास करना चाहिए।

इसके बाद प्राणायाम की बारी आती है। इसका महत्व बताते हुए ''योग कुण्डल्युपनिषद्'' में कहा गया है :—

हेतुद्वयं हिचित्रस्य वासना च समीरण:।
तयोर्विनष्टे एकस्मिन् द्वयोरपि विनश्यत:।।

तयोरादौ समीरस्य जयं कुर्यान्नरः सदा।
मिताहारश्चासनं च शक्ति चालनतृतीयकः।।

अर्थात् चित्त की अस्थिरता के दो कारण होते हैं वासना और प्राण। इनमें से एक के नष्ट हो जाने पर दूसरा स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

इसके लिये मिताहार, आसन और प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम हठयोग की एक प्रमुख किया है। इसके कई भेद हैं और उनके अलग-अलग फल बताये गये हैं। इनमें शीतली प्राणायाम, सीत्कारी प्राणायाम उज्जायी प्राणायाम, सूर्यभेदी प्राणायाम एवं भस्त्रिका प्राणयाम प्रमुख हैं। शीतली प्राणायाम एवं सीत्कारी प्राणायाम का अभ्यास हर व्यक्ति कर सकता है, किन्तु सूर्यभेदी प्राणायाम भस्त्रिका प्राणायाम, बन्ध एवं मुद्राओं का अभ्यास योग के उत्तम अधिकारी को ही गुरुपदेश से करना चाहिए। प्राणायाम की गणना तप में की गई है। इससे नाड़ियों के सभी मल जाते हैं, सभी प्रकार के पाप जलकर नष्ट हो जाते हैं और साधक मोक्ष द्वार तक पहुँच जाता है। प्राणायाम का फल बताते हुए महर्षि पतञ्जलिदेव जी महाराज ने कहा है :—

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।

अर्थात् प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर प्रकाश के रास्ते का आवरण नष्ट हो जाता है। जिससे साधक हजारों मील दूर देखने लगता है और हजारों मील दूर की बातें सुनने लगता है। ''योगतत्वोपनिषद्'' में कहा गया है :— यत्नपूर्वक अभ्यास करने से साधक में ये वाह्यचिह्न प्रकट हो जाते हैं— उसका शरीर हल्का और तेजस्वी बन जाता है, जठराग्नि बढ़ जाती है और शरीर वृश हो जाता है।

इस अवसर पर योग में विघ्न करने वाले आहार त्याग देना चाहिए। नमक, तेल, खटाई, रूखा और तीक्ष्ण भोजन, स्त्री प्रसंग, अधिक चलना, हींग आदि मसाले, हरे साग, प्रातःकाल का स्नान एवं उपवास तथा शरीर को कष्ट देने वाले सभी कार्य त्याग दे। अभ्यास काल के आरम्भ में केवल घी और दूध का ही सेवन करना चाहिए। अभ्यास करते समय जो पसीना आये उसे शरीर में ही मल लेना चाहिए। इसके बाद वायु की धारणा शक्ति धीरे-धीरे बढ़ती रहने से आसन पर बैठे हुए साधक की देह में कम्प होने लगता है। अभ्यास और अधिक बढ़ जाने पर उसकी दादुरी वृत्ति सिद्ध हो जाती है और वह मेढ़क की तरह उछलने लगता है। धीरे-धीरे उसका आसन भी जमीन पर से ऊपर उठने लग जाता है। भूचरी सिद्धि प्राप्त हो जाने पर उसका पृथ्वी तत्व पर एवं समस्त भूचर प्राणियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। उसका शरीर कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है।

इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यासी बहुत थोड़े समय में योगैश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है। साधक को यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि- वह गुरुदेव के सान्निध्य में ही प्राणायाम एवं हठयोग की अन्य क्रियाओं का अभ्यास करे।

— क्रमशः

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

श्रीकृष्ण जन्मष्टमी का पावन पर्व था। योगाचार्य श्री तपोनिधि जी के आश्रम में सत्संगियों की भीड़ एकत्रित होती जा रही थी। श्री तपोनिधि महाराज की जय हो, योग योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र की जय हो, श्री बांके बिहारीलाल की जय हो।'' के गम्भीर एवं चित्ताकर्षक घोष से वातावरण आलोड़ित हो रहा था। आश्रम की सीमा आरम्भ होते ही मार्ग के दोनों ओर श्वेत पुष्पों से लदे हुए कदम्ब के वृक्ष सुशोभित थे, जो कि अपनी शीतल एवं मनमोहक सुगन्ध से आगन्तुक भक्तों का श्रम हरते हुए उनका आतिथ्य कर रहे थे। श्री तपोनिधि जी की पर्णकुटी के बाहर एक ऊँचे मञ्च पर योगेश्वर श्री श्याम सुन्दर का श्री विग्रह एक हिण्डोले पर शोभायमान था, जो कि मोतिया, चम्पा, कदम्ब एवं गुलाब के पुष्पों से इस प्रकार सजाया हुआ था ऐसा प्रतीत होता था कि वे अभी बोलने ही वाले हैं। वहां जलती हुई अगरबत्तियों एवं गुगुल के मनमोहक धुयें से वायुमण्डल सुवासित हो रहा था।

अन्तेवासी बढुक वर्ग आश्रम की व्यवस्थायें तथा आगन्तुक सत्संगियों को ठहराने की व्यवस्था में लगा हुआ था। दो पीताम्बर धारी बदुक श्रीकृष्ण की झांकी के आगे चँवर डोला रहे थे। सामने गोबर से लिपे-पुते विस्तृत आंग पर स्वच्छ टाट एवं घास की चटाइयाँ बिछी हुई थीं जिन पर सत्संगी लोग बैठते जा रहे थे। ''गोविंद बोलो भाई गोपाल बोलो,

राधारमण हरि गोविंद बोलो।'' की मधुर संकीर्तन ध्वनि अनवरत चल रही थी। लोग आकर श्रीकृष्ण के श्री विग्रह को सिर नवाकर अपना स्थान ग्रहण करते जा रहे थे और संकीर्तन में सम्मिलित होते जा रहे थे। श्रीकृष्ण की झांकी के बगल में कदम्ब वृक्ष के नीचे एक दूसरा मञ्च बना हुआ था। वह स्थान योगाचार्य जी के लिए सुरक्षित था। सत्संगियों की दृष्टि बार-बार उस ओर जा रही थी। योगाचार्य जी के शुभागमन में विलम्ब का अनुमान कर सत्संगियों ने अधीरतावश उच्च स्वर में यह गीत अलापना शुरू कर दिया—

तुम ठाकुर हम पुजारी आजा रे सांवरिया।
मन मन्दिर को स्वच्छ कियो अब आकर नाथ सजाओ।
जगमग-जगमग छाये भीतर ऐसी ज्योति जगाओ।
तुम पर हम बलिहारी आजा रे सांवरिया।
तुम ठाकुर हम पुजारी आजा रे साँवरिया।।
सुबह शाम नित लगाके आसन श्री चरणन को ध्याऊँ।
होये पुलकित रोम-रोम मैं सत्चित् आनंद पाऊँ।
देन प्रभु तेरी न्यारी आजा रे सांवरिया।
तुम ठाकुर हम पुजारी आजा रे साँवरिया।।
योग-योगेश्वर सद्गुरु मेरे योगसुधा वरषाओ।
कृतकृत माने जनसाधारण प्रेम लहर सरसाओ।।
हमको आश तुम्हारी आजा रे सांवरिया।
तुम ठाकुर ------------------------------ ।।
सिद्धों के सरताज योगेश्वर आशीष तेय पाऊँ।
जन्म-जन्म तक है लोकेश्वर महिमा तेरी गाऊँ।।
तुम हो मंगलकारी आजा रे सांवरिया।
तुम ठाकुर हम पुजारी आजा रे सांवरिया।।

उपस्थित पुरुष, स्त्री एवं बच्चे सभी आल्हादित होकर बड़ी तन्मयता के साथ उपरोक्त गीत गा रहे थे। वे सभी इतने भाव विभोर हो रहे थे कि उन्हें अपने तन तक की सुध नहीं थी। दो व्यक्ति आजा रे सांवरिया' कहते हुए तालियां बजाते-बजाते समाधिस्थ हो गये थे। एक देवी ''साँवरिया-साँवरिया'' कहती हुई कुछ समय रुदन करती रही। आनन्दाश्रुओं से उसका आंचल बिल्कुल भीग गया था। सहसा उसकी दृष्टि ऊपर को चढ़ गई और वह दादुरी वृत्ति से उछलती हुई श्रीकृष्ण के हिण्डोले की ओर बढ़ने लगी। वहां पहुँचकर पत्थर के मानिन्द स्तब्ध बैठी रही। उस समय उसकी मुद्रा ऐसी बन गई थी कि ऐसा आभास हो कि वह श्रीकृष्ण में लयता प्राप्त करके वंशीवादन कर रही हो। संकीर्तन बराबर चल रहा था।

उधर योगाचार्य जी अपनी पर्णकुटी के अन्दर बैठे हुए दिव्य-दृष्टि से यह सब दृश्य देख रहे थे एवं अपने भक्तों के मनोभावों को पढ़ रहे थे, फिर भी कौतुकवश अब तक अनजाने से इने हुए थे। सत्संगियों की मनोदशा को देखकर

वे शीघ्रता से उठे और तेज कदमों से मञ्च की ओर बढ़ने लगे। वे एक उज्ज्वल अधोवस्त्र (धोती) धारण किये हुए थे। इसके अतिरिक्त उनके तन पर कोई वस्त्र नहीं था। उनके गौर-वर्ण दीर्घ वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत सुशोभित था तथा मुखमण्डल अपार तेज से देदीप्यमान था। सभी सत्संगियों ने खड़े होकर तथा नतमस्तक होकर उनका अभिवादन किया। ''श्री तपोनिधि महाराज की जय हो' का आल्हादक गगनभेदी जयघोष पुनः वायुमण्डल में गुञ्जरित हो उठा। योगाचार्य श्री तपोनिधि जी महाराज ने सभी भक्तों को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखकर आश्वस्त किया एवं उन्हें बैठने का संकेत करके स्वयं भी मञ्च पर आसीन हो गये।

कुछ क्षण के लिए वातावरण में खामोशी सी छा गई। सबकी दृष्टि योगाचार्य जी के मुखारविन्द की ओर टिकी हुई थी और कान उनके उपदेशामृत को पान करने के लिए लालायित थे। इसी बीच योगाचार्य जी ने उपस्थित समुदाय को अमृत बरसाने वाली वरद दृष्टि से देखकर अत्यन्त मधुर एवं गंभीर वाणी में उपदेश आरम्भ किया—

तुम सब बड़े सौभाग्यशाली हो जो कि अखिल ब्रह्माण्ड नायक, योग-योगेश्वर श्रीकृष्ण के पावन चरणारविन्दों में प्रीति रखते हो और उनकी पावन जयन्ती मनाने यहां एकत्रित हो रहे हो। यद्यपि समस्त हिन्दू जाति परम्परा से इस पुनीत पर्व को मनाती आ रही है फिर भी अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि श्रीकृष्ण ने द्वापर युग में शरीर धारण किया था और फिर उसे छोड़ दिया। किन्तु बात ऐसी नहीं है। श्रीकृष्ण तो अनादि हैं, अजन्मा है तथा अविनाशी हैं। वे आज भी अव्यक्त रूप में सर्वत्र विद्यमान हैं एवं कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का संचालन कर रहे हैं। गीता में उन्होंने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है—

अजोऽपि सन् अव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संथिापनार्थाय संभवामिं युगे-युगे।।
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः।

इत्यादि श्लोकों में उन्होंने इस रहस्य को जनकल्याणार्थ प्रकट कर दिया है। तुम लोग गीता का उपदेश नित्य प्रति सुनते हो जिसमें जगदात्मा ने पवित्र योग-मार्ग का उपदेश किया है। अतः तुम लोग ध्यानयोगी बनो। नियमानुवर्तिता से ध्यानाभ्यास किया करो और अपने गुरुप्रदत्त मन्त्र का खूब जाप किया करो। यही श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों की सच्ची भक्ति है, सच्ची उपासना है और आत्मकल्याण का एकमात्र साधन है। देखो- ध्यानबिन्दुपनिषद में ध्यानयोग की महिमा इन शब्दों में गाई गई है—

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णां बहु योजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेत्ता कदाचन।।

अर्थात् कई योजन तक फैला हुआ पापों का पहाड़ भी ध्यानयोग के अभ्यास से नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त उन पापों को नष्ट करने का अन्य कोई साधन नहीं है। यह सुनकर प्रियव्रत नामक एक जिज्ञासु युवक हाथ जोड़कर सम्मुख खड़ा हो गया और बड़े विनीत भाव से बोला—

प्रश्न : परम पूज्य गुरुदेव! कृपा करके यह बतलाइये कि ध्यानाभ्यास की सरल और उत्तम विधि कौन सी है जिसे अपनाकर साधारण साँसारिक व्यक्ति भी ध्यानयोगी बन सकें।

उत्तर : हे पुत्रः सुनो— भगवान व्यासदेव जी ने योगी बनने का एक उत्तम उपाय प्रशस्त किया है-

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत।
स्वाध्याय योगसम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् साधक को चाहिए कि वह किसी सुखासन पर बैठकर अपने इष्ट-मन्त्र का खूब जाप करें। जप का अभ्यास इतना अधिक बढ़ा ले कि इष्ट मन्त्र उसके मन और बुद्धि में वास कर जाये। जप के बाद ध्यान और ध्यान के बाद जप करें। इस प्रकार लगातार अभ्यास करते रहने से वह अन्तर्जगत में प्रवेश पा जायेगा और उसे परमात्मा का प्रकाश मिल जायेगा।

ध्यानयोग की साधना-विधि गीता के छठे अध्याय में श्लोक संख्या ११ से १४ तक सविस्तार वर्णित की गई है। यही बात श्वेताश्वेतरोपनिषद के निम्नलिखित श्लोक में भी दुहराई गई है।

त्रिरून्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान, स्त्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि।।

साधक को चाहिए कि वह ध्यानाभ्यास करते समय अपना सिर, गला और छाती इन तीनों को एक सीध में ऊँचा उठाये रखे तथा शरीर को सीधा और स्थिर रखे। इसके बाद प्रत्याहार द्वारा समस्त इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर उनका मन के द्वारा हृदय में निरोध कर लेना चाहिये। उसके बाद ॐकार रूप नौका द्वारा अर्थरूप 'ॐ' इस मन्त्र का जप तथा उसके अर्थरूप परमेश्वर का ध्यान करते हुए समस्त भयानक प्रवाहों को पार कर लेना चाहिए।

प्रश्न : पूज्य गुरुदेव! कृपया यह भी स्पष्ट कर दीजिये कि साधक को कैसे स्थान पर बैठकर ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहिये?

उत्तर : हे सौम्य! सुनो। वैसे तो मनुष्य हर स्थान पर ध्यानाभ्यास कर सकता है। किन्तु तीव्रतम अभ्यास के लिए यह आवश्यक है कि साधक ध्यानयोग की साधना के लिए पवित्र और एकान्त स्थान की ही तलाश करे। जहाँ तक सम्भव हो वह स्थान इस प्रकार का होना चाहिए, जैसे–

समे शुचौ शर्करा बह्निबालुकाविवर्जिते शब्दजला-श्रयादिभिः।

मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवात्ताश्रयणे प्रयोजयेत्।।

अर्थात् ध्यानयोगी को ऐसे स्थान पर अपना आसन लगाना चाहिए जहां की भूमि समतल हो, ऊँची-नीची और टेढ़ी-मेढ़ी न हो, जो सब प्रकार से शुद्ध हो और स्वभाव से ही पवित्र हो, जहां मन में विक्षेप करने वाला किसी प्रकार का शब्द न होता तो, जो जल और आश्रय आदि की दृष्टि से अनुकूल हो, जहां का दृश्य नेत्रों को पीड़ा देने वाला न हो ऐसे गुफा आदि वायु शून्य स्थान में ध्यानयोग की साधना करनी चाहिए।

प्रश्न : प्रभो! साधक का ध्यानाभ्यास ठीक चले रहा है कि नहीं इसकी क्या पहचान है?

उत्तर : प्रिय वत्स! तुम योग के उत्तम जिज्ञासु मालूम पड़ते हो और जनकल्याणार्थ इस प्रकार के गूढ़ प्रश्नों को पूछ रहे हो। अतः सुनो— तुम्हारे प्रश्न का उत्तर श्वेताश्वतरोपनिषद में इस प्रकार दिया गया है—

नीहारधूमार्कानिलानलानां, खद्योतविद्युत्स्फटिक शशीनाम।

एतानि रूपाणि पुरस्सराणि, ब्रह्मण्यभिव्यक्ति कराणि योगे।।

परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त जब मनुष्य ध्यानयोग का साधन आरम्भ करता है तो उसे अपने सामने कभी कुहरे के सदृश रूप दीखता है, कभी धुआँ सा दिखाई देता है, कभी सूर्य के समान तेज प्रकाश दीखता है, कभी निश्चल वायु के समान निराकार रूप अनुभव होता है, कभी अग्नि के सदृश, कभी जुगुनू की सी टिमटिमाहट, कभी बिजली की सी चकाचोंध, कभी स्फटिक मणि के समान उज्ज्वल रूप, कभी चन्द्रमा का सा शीतल प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार के सभी दृश्य योग-साधना में प्रगति के द्योतक हैं।

श्रद्धापूर्वक निरन्तर अभ्यास करता हुआ ध्यानयोगी योग की विधि भूमिकाओं को पार करता हुआ उस स्थिति को पा जाता है जिसके लिये मुण्डकोपनिषद में कहा गया है–

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अर्थात् कार्य और कारणरूप उस परात्पर परमेश्वर को तत्व से जान लेने पर जीवात्मा के हृदय में स्थित अविद्या रूप वह गाँठ खुल जाती है जिसके कारण उसने इस जड़ शरीर को ही अपना स्वरूप मान रखा है, उसके सभी संशय दूर हो जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं जिससे वह सभी बन्धनों से मुक्त होकर परमानन्द स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है।

तुम्हें जगदात्मा श्रीकृष्ण के वचनों पर विश्वास करते हुए योगी बनने की चेष्टा करनी चाहिए। भगवान का यह आदेश है-

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिकी योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन।।

इतना कहकर योगाचार्य जी मौन हो गये और ''गोविन्द बोलो भाई गोपाल बोलो'' की संकीर्तन ध्वनि पुनः वायु-मण्डल में गूँजने लगी।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

प्रश्न : परम पूज्य श्री गुरुदेव! कृपा करके यह बतलाइये कि - विदेह किसे कहते हैं और उसकी क्या सामर्थ्य होती है?

उत्तर : प्रिय सौम्य ! जिन योगियों को आनन्दानुगत समाधि की प्राप्ति हो जाती है और विशुद्ध सत्व के भावों को अनुभव करते हुए जो योगी उसमें अपने आपको लय कर डालते हैं, वे विदेह कहलाते हैं। विदेहों के अन्दर देह-धर्म नहीं हुआ करते। उन्हें इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं रहती। उनके सभी काम संकल्प मात्र से हो जाया करते हैं। उन्हीं के सम्बन्ध में शास्त्रों का यह कथन है-

श्रण्वन् कर्णः भवति, पश्यन् नेत्रम् भवति, स्पृशन् त्वग् भवति, जिघ्रन् नासिका भवति।

अर्थात् वे संकल्पमात्र से ही हजारों मील दूर की बातें सुन सकते हैं, हजारों मील दूर के दृश्य देख सकते हैं, हजारों मील दूर का स्पर्श कर सकते हैं और हजारों मील दूर की गन्ध ग्रहण कर सकते हैं।

प्रश्न : हे गुरुदेव! क्या इस अवस्था को प्राप्त कर लेना ही कैवल्य मोक्ष कहा गया है और क्या विदेहों को पुनः संसार में जन्म लेना नहीं पड़ता? क्या विदेहावस्था प्राप्त लेना नहीं पड़ता? क्या विदेहावस्था प्राप्त योगियों को ही जीवन्मुक्त कहा गया है या कि उनकी कोई और श्रेणी है?

उत्तर : हे पुत्र सुनो! विदेह योगियों का चित्त साधिकार रहता है। अतः उन्हें भी जन्म लेना ही पड़ता है। किन्तु वे अपने आपको मुक्त समझते हैं और कैवल्य का सा आनन्द अनुभव करते हैं। गुणाधिकार से आगे निकल कर ही योगी निर्गुण चैतन्य को प्राप्त होता है और तभी उसके चित्त का अधिकार समाप्त होता है। जब गुणों का गुणों में अवसान हो जाता है तब हृदय ग्रन्थि खुल जाती है, सब संशय नष्ट हो जाते हैं और कर्मबन्धन समाप्त हो जाते हैं। ऐसा योगी कैवल्यपद को पा जाता है। यहाँ पराकाष्ठा है और यही परा गति है।

गीता में इसे ब्राह्मी-स्थिति कहा गया है और उसकी प्राप्ति का उपाय निम्नलिखित श्लोक में बताया गया है-

निर्मानमोहा जितसंगदोषा, अध्यात्मनित्या विनिवृत्त-कामाः।
द्वन्दैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञै गच्छनत्यमूढाः पदमव्ययम् तत्।।

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोष को जीत लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरूप में नित्य-स्थिति है और जिनकी कामनायें पूर्णरूप से नष्ट हो गई हैं वे सुख दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं—

न तद्भासयते सूर्यः न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य को लौटकर संसार में नहीं आना पड़ता, उस स्वयं प्रकाश परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है न चन्द्रमा और न अग्नि ही वही मेरा परम धाम है।

प्रश्न : पूज्य गुरुदेव! आपकी कृपा से मैं इस विषय को भलीभांति समझ गया हूँ कि- योगी की परम गति क्या और किस प्रकार होती है तथा कैवल्य मोक्ष किसे कहते हैं? कृपा करके यह भी बतला दीजिये कि जीवन मुक्त किसे कहते हैं?

उत्तर : हे पुत्र! विदेहावस्था तथा प्रकृति लयता की स्थिति को पारकर केवलीभाव को प्राप्त हुए योगियों को ही जीवन्मुक्त कहा गया है।

महोपनिषद् के दूसरे अध्याय में जीवन्मुक्त के लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं।

तपः प्रभृतिना यस्मै हेतुनैव विना पुनः।
भोगा इह न रोचन्ते स जीवन्मुक्त उच्यते।।
आपतत्सु यथाकालं सुखदुःखेष्वनारतः।
न हृष्यति ग्लायति यः स जीवन्मुक्त उच्यते।।
अहंकारमयीं त्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः।
तिष्ठति ध्येय संत्यागी स जीवन्मुक्त उच्यते।।
मौनवान निरहंभावो निर्मानो मुक्तमत्सरः।
यः करोति गतोद्वेगः स जीवन्मुक्त उच्यते।।
सर्वत्र विगतस्नेहो यः साक्षिवदवस्थितः।
निरीच्छो वर्तते कार्ये स जीवन्मुक्त उच्यते।।
येन धर्ममधर्मं च मनोमननमीहितम्।

सर्वमन्तः परित्यज्य स जीवन्मुक्त उच्यते।।
कट्वम्ल लवणतिक्तममृष्टं मृष्टमेव च।
शान्त संसारकलनः कलावानपि निष्कलः।
य सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।।
यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि निस्पृहः।
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते।।

जीवनमुक्त वही है जो तप आदि साधनों के बिना स्वभाव से ही साँसारिक भोगों से विरक्त है। समय-समय पर मिलने वाले सुख और दुःखों में जो आसक्त नहीं होता तथा जो सुख से हर्षित और दुःख से दुःखी नहीं होता, ऐसा पुरुष काम, क्रोध, हर्ष, उद्वेग, शोक आदि विकारों से मुक्त रहता है और अहंकारयुक्त वासना से मुक्त रहता है और अहंकारयुक्त वासना को स्वभाव से ही त्याग देता है तथा चित्त के अवलम्बन में जो सदा त्याग-भाव रखता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

जिसका मौन रहने का स्वभाव हो, जो मान-मत्सर के विकार से रहित है, जो उद्वेग रहित होकर अपने कर्म में लगा रहता है, जो मोह रहित होकर साक्षी के समान जीवन व्यतीत करता है और बिना किसी फल की कामना किये कर्मरत रहता है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहलाता है। जिसने धर्म-अधर्म, सब प्रकार के संकल्प विकल्प तथा साँसारिक विषयों के चिन्तन का त्याग कर दिया है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहलाता है। जो पुरुष खट्टे चरपरे, कड़वे, मीठे, नमकीन पदार्थों को स्वाद की चिन्ता किये बिना ही खा लेता है, अर्थात् जो पुरुष स्वादिष्ट और स्वादहीन पदार्थों को एक समान समझकर खा लेता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है, जो कलायुक्त होते हुए भी कलारहित रहता है, चित्त के रहते हुए भी जो चित्तरहित बना हुआ है तथा जिसने सांसारिक विषयों का चिन्तन छोड़ दिया है वह जीवन्मुक्त है। विश्व के सभी अर्थजालों के मध्य स्थिर रहते हुए भी पराये धन से निस्पृह रहने वाला तथा आत्मा में पूर्णता का अनुभव करने वाला महात्मा जीवन्मुक्त कहलाता है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! क्या सामान्य सांसारिक व्यक्ति भी योग साधना द्वारा ऐसी उच्चतम स्थिति को पाकर शाश्वत सुख का अनुभव करता हुआ संसार-चक्र से मुक्त हो सकता है?

उत्तर : हां पुत्र! योग से सब कुछ संभव है। हमारे आचार्यों का यह अनुभूत सिद्धाँत है-

यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिद ज्ञातं भवति सेयं योगविद्या।

अर्थात् जिसे जान लेने से सब कुछ जाना जाता है, जिसे पाकर सब कुछ अपने आप मिल जाता है वही यह योग-विद्या है।

भगवान पतञ्जलिदेव द्वारा दर्शाये गये अष्टाङ्गयोग के सिद्धान्तों पर आचरण करता हुआ मनुष्य अपने जीवन को योगमय बना सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! अष्टाङ्गयोग किसे कहते हैं तथा उसे अपनाकर किस प्रकार मनुष्य योगी बन सकता है?

उत्तर : प्रिय वत्स! सुनो— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि— ये योग के आठ अंग हैं। इनमें से यम और नियम योग-विद्या की वर्णाक्षरा है। जब तक इनका दृढ़ता से पालन न किया जाये तब तक साधक योगमार्ग में आगे नहीं बढ़ सकता। अतः सब प्रथम यम-नियमों की ही साधना करनी चाहिये। अहिंसा सत्स, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम कहलाते हैं।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं।

इनमें से यदि किसी एक का भी दृढ़ता से पालन किया जाये तो शेष यम नियमों का पालन स्वतः ही हो जाता है। उदारणार्थ- जो व्यक्ति मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसक है, जिसने जीवन में अहिंसा व्रत को धारण कर रखा है, उससे सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का तथा पांचों नियमों का पालन अपने आप ही हो जायेगा। इसी प्रकार जो व्यक्ति तपस्वी है या स्वाध्यायशील है उससे भी सभी यमों और शेष नियमों का पालन स्वाभाविक ही हो जायेगा। यम-नियमो के बाद तीसरा अंग 'आसन' है। आसन सिद्धि के लिए दो बातें बताई गई हैं-

प्रयत्न शैथिल्यादनन्तसमापत्तिभ्याम्।

अर्थात् शरीर सम्बन्धी सब प्रकार की चेष्टाओं को त्याग देना और परमात्मा में मन लगाना इन दो उपायों से आसन सिद्ध होता है। आसन की स्थिरता के लिए ब्रह्मचर्य रूप 'यम' का तथा 'तप' स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि नियमों का पालन परमावश्यक है।

योग का चौथा अङ्ग प्राणायाम है। प्राणायाम की गिनती तपों में की गई है। प्राणायाम के अभ्यासी के लिए यम-नियमों का पालन और भी अधिक आवश्यक है। साथ ही आसन की स्थिरता भी जरूरी है।

पाँचवां अङ्ग 'प्रत्याहार' है। इन्द्रियों की बाह्य वृत्तियों को सब ओर से समेटकर मन में विलीन करने का अभ्यास 'प्रत्याहार' कहलाता है। प्रत्याहार का फल बताया गया है-

ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्।

अर्थात् प्रत्याहार सिद्ध हो जाने पर साधक की इन्द्रियां सर्वथा उसके वश में हो जाती हैं।

इसके बाद योग के तीन अन्तिम अंग— धारणा, ध्यान

और समाधि हैं। इन्हें अन्तरंग अंग माना गया है। यमों से लेकर प्रत्याहार तक योग के पांच बहिरंग अंग कहे जाते हैं। इन पर दृढ़ता से आचरण करता हुआ साधक ही धारणा, ध्यान और समाधि में प्रवेश पा सकता है।

इस प्रकार योग के सभी अंग एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और एक दूसरे के पोषक हैं। अष्टाङ्गयोग का फल बताते हुए भगवान पतञ्जलिदेव लिखते हैं—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्याते:।

अर्थात् योग के आठ अंगों को आचरण में लाने से चित्त के राग–द्वेषादि मल नष्ट हो जाते हैं और साधक के ज्ञान का प्रकाश उत्तरोतर बढ़ता हुआ विवेक–ख्याति तक पहुँच जाता है, उसकी बुद्धि का खजाना खुल जाता है और वह निर्बीज समाधि को प्राप्त हो जाता है।

अष्टाङ्गयोग के अन्तर्गत– तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को योगदर्शन में क्रियायोग के नाम से वर्णित किया गया है। इसके अभ्यास से मन्द से मन्द साधक भी योग की अमर निधि को पा जाया करता है। इसके साथ ही हमारे योगाचार्यों का यह आदेश भी ध्यान देने योग्य है—

उतिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

क्षुरस्य धारा निशितादुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो–वदन्ति।।

अर्थात्– तत्वदर्शी महापुरुषों की शरण में जाकर एवं उनका कृपा–भाजन बनकर ही मनुष्य योग की अमर निधिय को पा सकता है बिना उनकी सहायता के योगमार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

प्रश्न : परम पूज्य श्री गुरुदेव! बिनु गुरु भव निधि तरह न कोई' गोसांई तुलसीदास जी के इस कथन का क्या अभिप्राय है?

उत्तर : प्रिय सौम्य! अन्य देहधारियों की भाँति मनुष्य भी अनादिकाल से अविद्यादि क्लेशों से ग्रस्त होकर जन्म-मरण के चक्र में पड़ा हुआ है। वह अपने पूर्वकृत कर्मों के अनुसार सुख-दुःख, रोग-शोक एवं जटा आदि से ग्रस्त हुआ सुख की खोज में संसार में भटकता रहता है। उसका यह भटकना ही भवसागर है। इस भव-सागर से पार होने का एकमात्र साधन सद्‌गुरु शरणागति ही है। क्योंकि गुरु देव भवनिधि को पार कराने में एक कुशल मल्लाह का कार्य करते हैं। श्रीमद्भागवत् में कहा गया है-

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं,
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयाऽनुकूलेन नमस्वतेरितं,
पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा

अर्थात् स्वस्थ मनुष्य शरीर इस संसार रूपी सागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ नोका के समान है, गुरुदेव एक कुशल नाविक के समान हैं, योग साधना में प्रवृत्ति तथा उसके लिए अनुकूल वातावरण का मिल जाना ईश्वर कृपा रूप अनुकूल हवा है। यह सब कुछ प्राप्त हो जाने पर भी यदि मनुष्य भव सागर को पार नहीं कर लेता तो वह आत्म हत्यारा है।

बिनु गुरु भवनिधि तरइ न कोई।
जो बिरंचि शंकर सम होई।।

अपनी इस चौपाई में तुलसीदास जी ने भी अपना यही मत प्रकअ किया है कि बिना गुरु के मनुष्य भव-सागर को पार नहीं कर सकता। चाहे वह ब्रह्मा और शंकर जी के समान ही क्यों न हों।

प्रश्न : महाराज जी! कृपा करके यह बतलाइये कि गुरुदेव किस प्रकार से मनुष्य को भवनिधि से पार लगाते हैं?

उत्तर : हे पुत्र! यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि भवनिधि को पार करने का अर्थ है- आवागमन के चक्र से मुक्त होना। अर्थात् अविद्यादि क्लेशों से मुक्त होकर कैवल्य मोक्ष को प्राप्त कर लेना, किन्तु मनुष्य अपने पुरुषार्थ से इन क्लेशों से मुक्त हो जाये यह कुछ कठिन सी बात है। क्योंकि जन्म-जन्मान्तर के संस्कारवश हमारी इन्द्रियां बाहर के विषयों को ग्रहण करने की आदी बनी हुई हैं। इसी में ही जीव सुख अनुभव करता है। अन्तर्जगत के अतुल ऐश्वर्य का ज्ञान न होने के कारण उसकी उस ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती। जब परमेश्वर की अहैतुकी कृपा से सिद्धगुरु का सान्निध्य प्राप्त हो जाये तो उनकी कृपा से ही उसका मोह नष्ट होता है और उनके द्वारा प्रदत्त दिव्य-दृष्टि से वह अन्तर्दृष्टा बन पाता है।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक के पांचों क्लेश जो कर्माशय के निर्माता हैं और जीव को संसार चक्र में घसीटते रहते हैं, सद्‌गुरु के शक्तिपात से ही नष्ट होते हैं। बुद्धि और आत्मा के बीच जो अज्ञान का परदा है, जिसे माया तथा हृदय-ग्रन्थि कहा जाता है, सद्‌गुरु कृपा से नष्ट हो जाते हैं, सभी शुभाशुभ कर्म जलकर समाप्त हो जाते हैं और वह अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाता है। इस प्रकार वह पाप-पुण्य से रहित होकर आवागमन के चक्र से सदा-सदा के लिये मुक्त हो जाता है तथा ईश्वर प्राप्ति रूप परम शान्ति को पा जाता है, जिसे पाकर उसके लिए कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता।

गुरु शब्द 'गु' और 'रु' इन दो शब्दों के मेल से बना है। जिसमें गुकार का अर्थ है— माया का अज्ञान और रुकार का अर्थ है- उसे हटाने वाला। इसके अनुसार गुरुदेव शिष्य के अन्तःकरण से अज्ञानरूपी अन्धकार को हटाकर उसे ज्ञानरूपी प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। जिससे उसका सारा मोह नष्ट हो जाता है और वह यथार्थ वस्तु का ज्ञाता बन जाता है। गीता इस बात को प्रमाणित करती है।

मोहग्रस्त अर्जुन किंकर्त्तव्यविमूढ़ावस्था को प्राप्त होकर जब योगयोगेश्वर श्रीकृष्ण के शिष्यत्व को स्वीकार करते हुए आतभाव से यह निवेदन करता है-

शिर्षयस्तेऽहं शाधि मां त्वां ग्रपन्नम्।

तो जगदात्मा श्रीकृष्ण गीता के पवित्र उपदेश से उसका मोह दूर करते हुए उसे कर्त्तव्य का पालन करने तथा निष्काम

कर्म योगी बनने की आज्ञा देते हैं। फिर यह देखकर कि अर्जुन का मोहावरण अभी भी पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ, वे कृपापूर्वक उसे दिव्य दृष्टि प्रदान कर देते हैं।

पहले तो वे अपने योगोपदेशों से संसार की नश्वरता, आत्मा की अमरता, जीव की वृद्धावस्था एवं मुक्तावस्था, ईश्वर की सर्व व्यापकता एवं सर्वशक्तिमत्ता तथा समाधि प्राप्ति के उपाय आदि सभी तात्विक बातों का ज्ञान करा देते हैं और बाद में उसे तीव्र शक्तिपात द्वारा दिव्य-दृष्टि देकर इन सभी विषयों का प्रत्यक्ष दर्शन करा देते हैं। योगेश्वर श्रीकृष्ण के विराट शरीर के अन्दर समस्त अण्ड ब्रह्माण्डों एवं देवी-देवताओं का दर्शन करके तथा समस्त चराचर जगत की विनाशावस्था देखकर अर्जुन का समस्त अज्ञान नष्ट हो गया। भगवान द्वारा यह पूछे जाने पर- कि क्या तेरा मोह अब भी नष्ट हुआ कि नहीं? अर्जुन हाथ जोड़कर अत्यन्त भक्तिभाव से निवेदन करता है-

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युतः।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

हे कृष्ण! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे विवेक ज्ञान की प्राप्ति हो गई है। मेरे सारे सन्देह पूरी तरह नष्ट हो गये हैं, अब मैं अवश्य ही आपके आदेशों का पूर्णतया पालन करूँगा।

इस प्रकार सिद्धगुरु अपने उपदेशों से, संकल्प से और शक्तिपात से शिष्य के मोहावरण को दूर करके उसे कल्याण के उच्चतम शिखर पर पहुँचा देते हैं।

प्रश्न : हे प्रभो! सिद्धगुरु की क्या पहचान है तथा उनकी प्राप्ति के क्या उपाय है?

उत्तर : हे पुत्र सुनो! मनुष्य अपने चर्म-चक्षुओं से सिद्धों की पहचान नहीं कर सकता। जिन पर उनकी कृपा हो जाये वही सौभाग्यशाली उन्हें जान सकता है। साधारण जनों को उनके अन्दर कोई विशेषता नजर नहीं आती। इसके साथ ही यहां यह नियम भी लागू होता है कि सिद्धगुरु ढूँढ़ने पर नहीं मिला करते। जन्म-जन्मान्तर के संचित पुण्यों को भोगकाल उपस्थित होने पर ही सिद्धगुरु की प्राप्ति हुआ करती है। फिर भी शास्त्रों में अधिकारी शिष्य और अधिकारी गुरु के जो लक्षण वर्णित किये गये हैं उनके अनुसार गुरु में ये विशेषतायें होनी चाहिए-

आचार्यो वेद सम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः।
योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मकां शुचिः।।
गुरुभक्ति समायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः।
एवं लक्षण सम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते।।

वह वेद सम्पन्न आचार्य, विष्णु का भक्त, मत्सरता से रहित, योग का ज्ञाता, योगनिष्ठ योगात्मा, पवित्रता से युक्त, गुरुभक्त तथा परमात्मा में विशेष रूप से लीन रहने वाला है, इन लक्षणों से युक्त महापुरुष को गुरु कहा जाता है। जिसके अन्दर ये विशेषतायें हों वही गुरु कहलाने का अधिकारी है। पुण्यों के प्रभाद से ही ऐसे गुरुदेव मिला करते हैं। अतः कल्याणकामी व्यक्ति को अपने पुण्यों का खजाना बढ़ाते रहना चाहिए।

उपनिषदों में कहा गया है—

पश्चात्पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।
ततो नश्यति संसारोऽयम् नान्यथा शिवभाषितम्।।

अर्थात् जो मनुष्य स्वाध्यायशील है, ध्यानाभ्यासी है, परोपकारी है उसका पुण्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। जिसके फल स्वरूप उसे सिद्धगुरु की संगति प्राप्त होती है और उस सिद्धय की कृपा से वह योगी बनता है। तब वह संसार चक्र से मुक्त होता है। मुक्ति का और कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न : जिन सौभाग्यशाली व्यक्तियों को पूर्ण सिद्ध गुरुदेव की शरण प्राप्त हो चुकी है तो क्या उन्हें अपने आपको मुक्त समझना चाहिए? क्या शरणागत वत्सल गुरुदेव कृपापूर्वक स्वयं ही उनका उद्धार कर देते हैं या उन्हें आगे की कुछ पुरुषार्थ करना पड़ता है।

उतर : प्रिय वत्स! तुमने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है। तुम्हारे इस प्रश्न के अन्दर सिद्धयोग का सारा रहस्य छिपा हुआ है। तो सुनो—

आम लोगों के मनों में प्रायः यह धारणा बनी रहती है कि सिद्धों के दर्शन कर लेने मात्र से या उनसे गुरु-दीक्षा ले लेने मात्र से ही मनुष्य योगी बन जाता है, गुरुदेव उसके सभी काम स्वयं कर दिया करते हैं। जब उन्होंने हमे शिष्य रूप में अपना लिया है तो समाधि प्राप्त कराना अब उनका काम है, इसे वे जब चाहेंगे जिस प्रकार चाहेंगे हमारी इच्छा के बिना ही कर लेंगे। ऐसा कहकर जो लोग अकर्मण्य बने रहते हैं उनका योग सिद्ध नहीं होता।

गुरु कृपा वाली बात तो वहां लागू होती है जहां पूरी तरक से आत्म-समर्पण हो चुका हो। जिस साधक की समस्त लौकिक कामनायें पूरी तरह से नष्ट हो गई हैं, जो अपना जीवन, अपना शरीर तथा अपना सर्वस्व गुरुदेव के अर्पण कर चुका है और बिना संशय के मनसा, वाचा, कर्मणा, गुरुदेव की प्रत्येक आज्ञा का तत्परता से पालन करने वाला है ऐसे अनन्य गुरुनिष्ठ साधक पर गुरुदेव की पूर्ण कृपा हो जाया करती है और वह योग की अमर निधि को पाकर कृतार्थ हो जाता है।

शरणागति का यह अर्थ नहीं है कि साधक लौकिक कार्यों के सम्पादन में स्वयं को स्वतन्त्र समझकर उन्हें आसक्तिपूर्वक करता रहे, किन्तु ध्यान धारणा के काम को गुरुदेव के लिये छोड़ दे। ऐसे लोग गुरुदेव के कृपा भाजन नहीं बन पाते।

अत: कल्याणकामी व्यक्ति को चाहिए कि वह गुरुदेव के शरणागत होकर उनके आदेशानुसार साधन परायण रहे। गुरुमन्त्र का जाप ध्यानाभ्यास, गुरु-सेवा तथा परोपकार सम्बन्धी अन्य कृत्यों को करता हुआ साधक ज्यों ही अपने पुण्यों को बढ़ा लेता है त्योंही उस पर सिद्धगुरु की पूर्ण कृपा हो जाया करती है। जिस पर उनकी कृपा हो जाये उसकी मुक्ति में कोई सन्देह नहीं है वह तो मुक्त ही है।

ऐसे विरले ही सौभाग्यशाली पवित्रात्मा योग साधक होते हैं, जिनका जन्म-जन्मान्तर का पुण्य पराकाष्ठा पर पहुँच चुका होता है जिसके फलस्वरूप वे सिद्धगुरु के दर्शन मात्र से ही उनकी कृपा को पा जाया करते हैं और पूर्णयोगी बन जाते हैं। आम साधकों को तो इस कृपा लाभ के लिए अपनी स्वाध्याय की सम्पत्ति को बढ़ाना ही पड़ता है। क्योंकि –

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोग:।

भगवान पतञ्जलिदेव जी महाराज के इस सूत्र के अनुसार स्वाध्यायशील व्यक्ति को ही सिद्ध पुरुष, इष्टदेव तथा ऋषियों का दर्शन एवं उनका अनुग्रह प्राप्त हुआ करता है।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

प्रश्न : परम पूज्य गुरुदेव! प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। विशेष रूप से मनुष्य बुद्धिवादी होने के कारण अनादि काल से सुख की खोज में रहा है। किन्तु गहराई से देखने पर पता चलता है कि संसार में सुखी कोई नहीं है। मनुष्य बाहर से देखने पर भले ही सुखी नजर आये किन्तु वह किसी न किसी रूप में दुःखी ही होता है। कृपा करके यह बतलाइये कि— मनुष्य जीवन में दुःख कौन-कौन से हैं और उनका क्या कारण है?

उत्तर : हे पुत्र! तुम ठीक कहते हो कि- संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी अपने को दुःखी समझता है और दुःख-निवृत्ति के लिये सदैव प्रयत्नशील रहा करता है। सुख की दुराशा लिये वह तरह-तरह के भोग साधनों को जुटाता है किन्तु उसके हाथ दुःख के अतिरिक्त कुछ नहीं आता। वह जिन-जिन विषयों को सुख के लिए स्वीकारता है परिणाम में वे सब दुःखरूप ही होते हैं।

महर्षि पतञ्जलि देव जी महाराज दुःख का स्वरूप समझाते हुए अपने योग-दर्शन में लिखा है—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्चसर्वमेव दुःखं विवेकिनः।

सूत्र का अर्थ है- परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार-दुःख और गुणवृत्ति विरोध के कारण विवेकी पुरुष के लिए यह सारा संसार दुःख रूप ही है।

यों तो संसार में दुःख ही दुःख है किन्तु ये चार प्रकार के दुःख ही सभी दुःखों के मूल हैं। इनमें से कुछ दुःख परिणामी दुःख हुआ करते हैं। अर्थात् इन्द्रियों की चपलतावश हम जिन भोग-साधनों को अपने सुख के लिये स्वीकार करते हैं। वे भोगकाल में तो सुखदाई प्रतीत होते हैं किन्तु परिणाम में महान दुःख के दाता होते हैं। इस प्रकार के दुःखों को परिणाम दुःख कहा गया है।

गीता के पांचवें अध्याय के २२ वें श्लोक में तथा १८ वें अध्याय के ३७ वें श्लोक में परिणाम दुःखता का स्वरूप वर्णित किया गया है-

ये हि संस्पर्शजाः भोगः दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।।

इन्द्रिय और विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले जितने भी भोग हैं वे सब नाशवान हैं और दुःख के देने वाले हैं। इसलिए विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है वह यद्यपि भोगकाल में अमृत के समान मधुर लगता है परन्तु परिणाम में विष के सदृश भयानक होता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त लौकिक सुखों के अन्दर परिणाम दुःखता छिपी रहा करती है। जिसे मनुष्य मोहवश अनुभव नहीं करता।

ताप दुःख—

चित्त में इन्द्रियों के राग द्वेष पैदा होते रहा करते हैं। किसी प्रकार की कामना की पूर्ति न होने परन मन में एक गहरी जलन हो जाती है। इसी का नाम ताप दुःखता है। सभी प्रकार के सुख विनाशशील हैं। भोगकाल में उनके विनाश की संभावना से मन में एक प्रकार की व्याकुलता बनी रहती है। इसके साथ ही सुख का हेतु जो भोग-सामग्री किसी को प्राप्त है वही दूसरों को उससे बढ़कर प्राप्त है। यह देखकर वह व्यक्ति ईर्ष्या से जलता रहता है। इसी को तापदुःख कहते हैं।

संस्कार दुःख —

जिस समय सुख संस्कारों का भोगकाल उपस्थित होता है उस समय सुख संस्कार ही अधिकांशतया सन्मुख आया करते हैं। प्राणी जिन संस्कारों में सुख का अनुभव करता है उस समय उसकी वह सुख संस्कारानुभूति है। किन्तु यह अनुभूति सदा कायम नहीं रहती। सुख संस्कारों का भोगकाल समाप्त होने पर उन सुखों की स्मृति ही दुःखों का कारण बन जाया करती है। इसके साथ ही सुखोपभोग के संस्कार भोगासक्ति को बढ़ाते रहते हैं। अतः वे जन्मान्तर में भी दुःख के ही हेतु बनते हैं।

गुणवृत्ति विरोध दुःख—

गुणों के कार्य का नाम गुणवृत्ति है। सारा संसार सत्व, रज

और तम इन तीन गुणों पर आधारित है। गुणों के कार्य में परस्पर अत्यन्त विरोध है। सत्व गुण का कार्य प्रकाश ज्ञान और सुख है तो तमोगुण का कार्य अज्ञान अन्धकार और दुःख है। तीनों गुण साथ-साथ रहते हैं। एक प्रधान रहता है तो दूसरे दो गौण रहते हुए भी उसके विरोधी बने रहते हैं। इस प्रकार सुख-भोगकाल में भी दुःख और शोक बने रहते हैं। गुणवृत्ति विरोध एक ऐसा दुःख है जो कि मनुष्य के अन्तःकरण में हमेशा द्वन्द मचाये रखता है और उसे किंकर्त्तव्य विमूढ़ बनाये रखता है। इसी प्रकार पिता यदि सतोगुणी है तो पुत्र रजोगुणी है। उनका परस्पर स्वभाव नहीं मिलता और आपस में विरोध बना रहता है। पिता अपने को ठीक समझता है और पुत्र को अपने समान बनाना चाहता है किन्तु पुत्र अपने को ही ठीक समझता है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे में दोषारोपण करते हुए दुःखी रहते हैं। यह गुणवृत्ति विरोध पिता पुत्र में, भाई-बहिन में, पति-पत्नी में और यहाँ तक कि गुरु शिष्य में भी समान रूप से दिखाई देता है।

इन दुःखों के अतिरिक्त कुछ इस प्रकार के दुःख भी हैं जो कि मनुष्य को स्वाभाविक ही प्राप्त होते रहते हैं। ये दुःख आध्यात्मिक, आधि भौतिक और आधि दैविक नामक विविध दुःख हैं।

आध्यात्मिक दुःख—

शारीरिक और मानसिक कष्ट आध्यात्मिक दुःख कहलाते हैं। शरीर का रोग-ग्रस्त हो जाना ही शारीरिक कष्ट अथवा व्याधि तथा काम क्रोधादि विकारों से मन का अशांत बना रहना मानसिक कष्ट अथवा आधि कहलाता है। इन दुःखों से ग्रस्त होकर मनुष्य अपने जीवन काल में भी मृतक के समान बना रहता है।

आधि-भौतिक दुःख—

शेर, व्याघ्र, सर्प, बिच्छू आदि हिंसक जन्तुओं से पैदा होने वाला दुःख आधिभौतिक दुःख कहलाता है। इस दुःख से भी प्राणी सदा भयभीत बना रहता है।

आधि-दैविक दुःख—

ग्रह नक्षत्रादि से प्राप्त होने वाला दुःख आधि दैविक दुःख कहलाता है। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि दुःख भी इसी श्रेणी में आते हैं किन्तु मनुष्य इन दुःखों को सहने का इतना आदी बन गया है कि वह इन दुःखों को दुःख ही नहीं समझता।

जन्म-मृत्यु का दुःख—

यह दुःख पूर्वोक्त सभी दुःखों से सबसे अधिक कष्टप्रद एवं भयानक है। जन्म से पूर्व जीव ६ मास तक माता के गर्भ में घोर नारकीय यातनायें भोगता है। उस समय उसे अपने पूर्वजन्मों का पूरा ज्ञान होता है। अतः वह अत्यन्त भयभीत होकर कहता है-

मैंने अब तक तरह-तरह के आहार खाये, अनेक प्रकार के स्तनों का दूध पिया, बार बार जन्म लिया और मृत्यु को प्राप्त होता रहा हूँ। अपने कुटुम्बी जनों के लिए मैंने जो कर्म किये उनके कारण मैं कष्ट भोग रहा हूँ। इससे निकलने का कोई उपाय नजर नहीं आता। इस प्रकार घोर कष्ट को अनुभव करता हुआ वह तरह-तरह की प्रतिज्ञायें करता है कि—

यदि मैं इस बार किसी प्रकार योनि-द्वार से बाहर निकल जाऊँ तो भगवान महेश्वर की शरण लूंगा ताकि वे मेरे पापों का नाश करके मुझे मुक्ति दे दें, मैं भगवान नारायण की शरण लूँगा, मैं योग का अभ्यास करूँगा- आदि-आदि। ऐसी प्रतिज्ञायें करता हुआ वह बड़ी कठिनता से जन्म ले पाता हे और उसी क्षण भगवान विष्णु की त्रिगुणात्मिका माया का स्पर्श पाते ही वह सब कुछ भूल जाता है।

मरण का दुःख भी ऐसा ही भयंकर है। मनुष्य मृत्यु का नाम सुनते ही भयभीत हो उठता है। शरीर से प्राण निकलते समय जीवात्मा को एक हजार बिच्छुओं के एक साथ डंक मारने के समान असह्य वेदना हाती है। उस समय वह महान्धकार में भटकता हुआ सोचा करता है- सूर्य का वह प्रकाश, वायु का सुखद स्पर्श, मेरा घर तथा मेरे कुटुम्बीजन ये सब कहां चले गये? पता नहीं मैं किस दुःख पंक में पड़ गया हूँ। मुझे न कुछ दीखता है, न कुछ सुनाई देता है, न किसी का स्पर्श होता है और न मेरी भूख प्यास ही शान्त होता है और न मेरी भूख प्यास ही शान्त होता है। अब मैं क्या करूँ और किसकी शरण लूँ? इस प्रकार वह महान दुःख को भोगता है।

इस प्रकार विवेकी पुरुष के लिए इस संसार में दुःख के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। अतः बुद्धिमत्ता इसी में है कि मनुष्य अपने जीवन-काल में ही आत्म-कल्याण के लिए पुरुषार्थ करे तथा उपरोक्त दुःखों से सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाये। अखिल लोक पावन भगवान श्रीकृष्ण का आदेश है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह अपने पुरुषार्थ द्वारा अपना संसार सागर से उद्धार कर ले और अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुँचाये। क्योंकि यह जीवात्मा आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

प्रश्न : पूज्य गुरुदेव! आपने दुःखों की व्याख्या करके मुझ मूढ पर असीम कृपा की है। आपके सदुपदेश से मेरे हृदय में वैराग्य

के भाव जाग्रत हो रहे हैं। कृपा करके यह भी बतला दीजिये कि वह कौनसा ऐसा साधन है जिसके अवलम्बन से मनुष्य समस्त लौकिक दु:खों से सदा-सदा के लिए छूट जाये और कल्याण का भागी बन जाये।

उत्तर : हे पुत्र! सुनो— दु:खों से छूटने का एकमात्र उपाय योग ही है। क्योंकि सभी प्रकार के दु:ख पूर्व संचित पापों के परिणाम स्वरूप आया करते हैं और योगाभ्यास मनुष्य को निष्पाप बनाता है। ध्यानबिन्दुपनिषद का वचन है—

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यान योगेन नान्यो भेत्ता कदाचन।।

अर्थात् कई योजन दूर तक फैला हुआ पापों का पहाड़ ही क्यों न हो वह भी ध्यानयोग के द्वारा नष्ट हो जाता है। पापों के नाश का और कोई उपाय नहीं है।

योग साधना द्वारा जब मनुष्य आत्म साक्षात्कार कर लेता है तो उसके सभी प्रकार के शुभाशुभ कर्म जो सुख दु:ख के दाता हैं, समाप्त हो जाते हैं। जिससे वह दु:खों से छूटकर शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेता है। जगदात्मा श्रीकृष्ण ने समाधि-जन्य उस असीम सुख का वर्णन करते हुए गीता में कहा है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणाऽपि विचाल्यते।।
तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।

परम शान्ति के निधान परमात्मा की प्राप्ति रूप जिस अलभ लाभ से बढ़कर मनुष्य उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता। वह पूर्णकाम हो जाता है। उसकी दृष्टि में इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोग, त्रिलोकी का राज्य तथा मान प्रतिष्ठा सब नगण्य हो जाते हैं। जिस परमानन्द में स्थित योगी महान से महान विपत्ति आने पर भी विचलित नहीं होता। जो दु:खरूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है उसे अवश्य जानना चाहिए। वह योग-साधन न उकताये हुए चित्त से धैर्यपूर्वक, उत्साहपूर्वक, श्रद्धा एवं विश्वास पूर्वक करना चाहिए।

योग को अपनाये बिना मनुष्य दु:ख-द्वन्दों से छूट ही नहीं सकता। क्योंकि दृष्टा (जीवात्मा) और दृश्य (बुद्धि) इन दोनों का अनादिकाल से चला आया जो अज्ञान जनित सम्बन्ध है वही दु:खों का मूल कारण है। नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त अविकारी आत्मा का बौद्धेय धर्मों को अपनाकर अपने को सुखी-दु:खी, बद्ध एवं मरणधर्मा समझना ही जड़-चेतन की गांठ है। जब तक यह गांठ खुल नहीं जाती तब दु:खों का अभाव नहीं हो सकता। दु:खों की निवृत्ति के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य योगाभ्यास करें। भगवान पतञ्जलि देव जी ने ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'' कहकर योग की परिभाषा लिखी है। जिसका अर्थ है- चित्तवृत्तियों का समूलोन्मूलन हो जाना।

चित्तवृत्तियाँ अनन्त हैं और प्रतिक्षण उदित होती रहती हैं। निरन्तर अभ्यास के द्वारा उन वृत्तियों का पूरी तरह निरोध हो जाने पर जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। इसी अवस्था को समाधि कहा गया है। इस स्थिति को पाकर दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है। मुण्डकोपनिषद का वचन है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

उस परावर शुद्ध स्थिति को पा लेने के बाद जीव के हृदय की अविद्यारूपी गांठ स्वत: ही खुल जाती हैं, सभी प्रकार के संशय कट जाते हैं, समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं। जिससे यह जीव समस्त दु:खों से सर्वथा मुक्त होकर परमानन्द स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

प्रश्न : हे गुरुदेव! योगदर्शन में 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:' कहकर योग की परिभाषा की गई है किन्तु मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि चित्त किसे कहते हैं, चित्तवृत्तियां क्या हैं उनके निरोध से क्या अभिप्राय है? अत: इस विषय पर प्रकाश डालने की कृपा कीजिये।

उत्तर : हे सौम्य! सुनो— मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन्हें अन्त:करण चतुष्टय कहा गया है। अत: चित्त शब्द अन्त:करण का बोधक है। चित्त को सत्व भी कहा गया है। सत्व का अर्थ अन्त:करण है। गीता में चित्त के लिये ही 'मन' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त सांख्य में जिसे अन्त:करण कहा गया है उसे ही योग में चित्त की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार मन, बुद्धि और अहङ्कार ये तीनों चित्त में परिगणित हैं और चित्त का अर्थ अन्त:करण ही है।

हमारा चित्त सत्व, रज और तम प्रकृति के इन तीन गुणों तथा पञ्चमहाभूतों से प्रभावित रहता है। अत: इसमें वृत्ति-संस्कार प्रतिक्षण चलता रहता है। जिस प्रकार अगाध समुद्र में प्रतिक्षण तरंगे उठती रहती हैं। एक लहर बैठ जाती है तो दूसरी उठ खड़ी होती हैं। उसी प्रकार राग द्वेष आदि से कलुषित चित्त में हर समय कोई न कोई वृत्ति बनी रहती है। चित्त त्रिगुणात्मक है, जड़ है एवं पञ्चमहाभूतों का विकार है। वह आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होकर इन्द्रियों की सहायता से रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयों को ग्रहण करता है। उन-उन विषयों के चिन्तन से चित्त में जो परिणाम अथवा विकार उत्पन्न होते रहते हैं उन्हें वृत्तियाँ कहते हैं, जैसे- नेत्रेन्द्रिय (आँख) ने किसी सुन्दर रूप को देखा, मन ने उस पर चिन्तन करना आरम्भ कर दिया कि यह सुन्दर रूप है इसे कैसे प्राप्त किया जाये? बुद्धि का समर्थन पाकर वही भावना वृत्ति का रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार रस (स्वाद) ग्रहण करना रसनेन्द्रिय (जिह्वा) का विषय है, स्पर्श ग्रहण करना त्वचा का विषय है, शब्द सुनना (श्रोत्रेन्द्रिय (कान) का विषय है। इस प्रकार इन्द्रियों द्वारा पञ्चमहाभूतों के विषयों को ग्रहण करना और चित्त का तत्तद् विषयाकार को जाना ही चित्तवृत्ति है।

योगदर्शन में प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति भेद से चित्तवृत्तियों को पाँच भागों में बांटा गया है।

प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन प्रमाणों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे प्रमाणवृत्ति कहते हैं। दूसरी वृत्ति का नाम- विपर्यय है। विपर्यय का अर्थ- मिथ्या ज्ञान। किसी वस्तु के वास्तविक स्वरूप को न समझकर उसे दूसरी वस्तु समझ लेना ही विपर्यय वृत्ति है। तीसरी वृत्ति है- विकल्प। सुनी सुनाई बातों के आधार पर अविद्यमान वस्तु की कल्पना कर लेना विकल्प वृत्ति कहलाती है। चौथी वृत्ति निद्रा और पांचवीं वृत्ति स्मृति कही गई है।

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और निद्रा इन चार प्रकार की वृत्तियों द्वारा अनुभव में आय हुए विषयों के संस्कारों का पुन: प्रकट हो आना स्मृति वृत्ति कहलाती।

''योगश्चित्तवृत्ति निरोध:'' इस सूत्र में भगवान पतञ्जलि देव जी महाराज ने चित्त वृत्ति निरोध को ही योग बताया है। योग का अर्थ समाधि है और चित्तवृत्ति निरोध का अर्थ है- चित्त का वृत्तियों से रहित हो जाना किसी प्रकार की भी वृत्ति का उदय न होना अर्थात् मन की चञ्चलता का नाश हो जाना तथा सांसारिक विषयों के चिन्तन का बिल्कुल अभाव हो जाना और मन का तैल धारावत् परमेश्वर के चिन्तन में लगे रहना, यही चित्त वृत्ति निरोध है। इसी अवस्था को समाधि कहा गया।

अखिल लोक-पावन जगदात्मा श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज ने गीता के छठे अध्याय में चित्तवृत्ति निरोध रूप समाधि का वर्णन करते हुए कहा है-

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मन:।।

जिस प्रकार वायु रहित स्थान में रखा हुआ दीपक चलायमान नहीं होता अर्थात् उसकी ज्योति हिलती-डुलती नहीं, वही दशा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की हुआ करती है-

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वत:।।

जिस अवस्था में योगाभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त पूर्णतया शान्त हो जाता है और जिस अवस्था में परमेश्वर के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा के दर्शन करता हुआ सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही सन्तुष्ट रहता है तथा इन्द्रियों के अनुभव से परे केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है उसे जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी भगवत स्वरूप में चलायमान नहीं होता है तथा –

ये लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं तत:।
यस्मिन्स्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते।।
तं विद्याद्दु:खसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा।।

परमेश्वर की प्राप्ति रूप जिस अलभ-लाभ को पाकर वह योगी उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और भगवत्प्राप्ति रूप जिस अवस्था में स्थित हुआ वह भारी से भारी दु:ख से भी विचलित नहीं होता।

जो दु:खरूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिए वह न उकताये हुए चित्त से निश्चय पूर्वक करना चाहिए।

प्रश्न : हे गुरुदेव! आपकी कृपा से मैं यह भली-भांति समझ गया हूँ कि चित्त क्या है और चित्तवृत्तियाँ क्या हैं? साथ ही यह बात भी मेरी समझ में आ गई है कि चित्त वृत्ति निरोध से ही समाधिजन्य असीम सुख की प्राप्ति हुआ करती है किन्तु चित्तवृत्ति निरोध हो कैसे? क्योंकि मन अत्यन्त चंचल है उसका वश में होना कठिन नही नहीं बल्कि असम्भव भी है।

उत्तर : हे पुत्र! तुम ठीक कहते हो, मन वायु से भी अधिक चञ्चल है, इस बात को भगवान श्रीकृष्ण ने भी स्वीकार किया है किन्तु इसके साथ ही उन्होंने उसे वश में करने का उपाय भी बतला दिया है। जिज्ञासु अर्जुन की शंका का निवारण करते हुए भगवान कहते हैं—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहम चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

हे अर्जुन! इसमें सन्देह नहीं कि मन अत्यधिक चञ्चल है और बड़ी कठिनता से वश में होने वाला है फिर भी अभ्यास और वैराग्य के सहारे उसे वश में किया जा सकता है। भगवान पतञ्जलिदेव ने भी ''योगश्चित्त वृत्ति निरोध:'' कहकर जहां योग की परिभाषज्ञ की है वहाँ योगदर्शन समाधिपादी के १२ वें सूत्र में अभ्यास और वैराग्य को ही चित्तवृत्ति निरोध का साधन मानते हैं। जैसे-

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोध:।

इस सूत्र पर भाष्यकार श्री व्यासदेव जी महाराज लिखते हैं—

चित्तनदीनामोभयतो वाहिनी भवति कल्याणाय वहति पापाय च। या तु कैवल्य प्राग्भाराविवेक विषय निम्ना सा कल्याणवहा, संसारप्राग्भाराऽविवेक विषय निम्ना पापवहा।

तत्र वैराग्येणाविवेक विषयस्रोत: स्थिली क्रियते विवेक दर्शनाभ्यासेन विवेकस्रोत: उद्घाट्यते इत्युभयाधीनश्चित्तवृत्ति निरोध:।

अर्थात् चित्त रूपी नदी का प्रवाह दोनों ओर बहता रहता है कल्याण के लिए और पाप के लिए, जिसका प्रवाह कैवल्य से आरम्भ होकर विवेक विषय की ओर झुकता हुआ जाता है वह कल्याणवहा है और जिसका स्रोत संसार से पैदा होता है और अज्ञान की ओर झुकता जाता है वह चित्त नामक नदी पापवहा कहलाती है। इसलिये चित्त के वासनिक प्रवाह को वैराग्य द्वारा क्षीण किया जाता है और विवेक-दर्शन के अभ्यास से ज्ञान का स्रोत जाग्रत किया जाता है। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य ये दो ही चित्तवृत्ति निरोध के साधन हैं।

योगदर्शन में अभ्यास की परिभाषा करते हुए लिखा है-

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यास:।

अर्थात् स्वभाव से ही अत्यन्त चञ्चल मन को किसी ध्येय विषय में स्थिर करने के लिये बार-बार चेष्टा करते रहना अभ्यास कहलाता है। तथा-

द्रष्टानुश्रविक विषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।

अन्त:करण तथा इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष में अनुभव में आने वाले संसार के सभी भोग पदार्थों में तथा स्वर्गादि लोकों के सुखों में सर्वथा तृष्णा रहित हो जाना वैराग्य कहलाता है।

अभ्यास से वैराग्य की पुष्टि होती है और वैराग्य से अभ्यास में प्रवृत्ति बढ़ती है। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य ये दोनों एक दूसरे के प्रेरक और पोषक हैं।

अत: साधक को ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहिये। योगदर्शन में कहा गया है-

ध्यानहेयास्तद्वृत्तय:।

चित की उपरोक्त वृत्तियाँ ध्यानाभ्यास द्वारा नष्ट हो जाया करती है। ध्यानाभ्यास कैसे करना चाहिए इस सम्बन्ध में प्रात: स्मरणीय भगवान व्यासदेव जी महाराज का आदेश है-

स्वाध्यायाद्योगमासीद्योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

साधक को चाहिये कि वह पहले तो खूब मन्त्रजाप करे और फिर ध्यानाभ्यास करे अर्थात् जप की सहायता से ध्यानावस्था को प्राप्त करे तथा ध्यान के बाद जाप करे। स्वाध्याय से ध्यान को और ध्यान से स्वाध्याय को परिपक्व बनाता जाये। इस प्रकार स्वाध्याय और ध्यान की सम्पत्ति से आत्मसाक्षात्कार हो जाता है।

योगदर्शन में चित्त की स्थिरता के अनेकों उपाय बताये गये हैं। उनमें से कुछ उपाय ये हैं–

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

अर्थात् प्राणवायु को बार–बार बाहर निकालने और भीतर रोकने के अभ्यास से चित्त निर्मल और स्थिर होता है।

वीतराग विषयं वा चित्तम्।

जिस पुरुष के राग–द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं ऐसे विरक्त महापुरुष का चिन्तन करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है। अतः वीतराग पुरुष के मन में मन, बुद्धि में बुद्धि और अहंकार में अहंकार मिलाने का अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करने से साधक का चित्त स्थिर हो जाता है और उसके अन्दर उस महापुरुष के गुण आ जाते हैं।

स्वप्ननिद्राज्ञानावलम्बनं वा।

स्वप्न में हुए किसी दिव्य अनुभव का स्मरण करने एवं उसका चिन्तन करते रहने से चित्त स्थिर हो जाता है।

इस प्रकार चित्त की स्थिरता के लिये प्राणायाम, मन्त्रजाप, ध्यानाभ्यास तथा यम–नियमों का पालन आदि साधनों को आचरण में लाना चाहिये। इस प्रकार की साधना ही अभ्यास कहलाती है।

अभ्यास के साथ–साथ वैराग्य का भी वही महत्व है। अखिल लोक पावन जगदात्मा श्रीकृष्णचंद्रजी महाराज ने वैराग्य की महिमा का वर्णन करते हुए गीता में कहा है–

निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्दैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै–
र्गच्छन्त्यमूढ़ा पदमव्ययं तत्।।

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने संगदोष को जीत लिया है, जो सदैव परमात्मा के चिन्तन में ही लीन रहते हैं तथा जिनकी समस्त कामनायें सर्वथा नष्ट हो चुकी हैं, सुख–दुःख नामक द्वन्दों से विमुक्त हुए ऐसे वे ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

प्रश्न : हे गुरुदेव! कृपा करके यह बतलाइये कि 'ईश्वर प्रणिधान' किसे कहते हैं और उससे समाधि किस प्रकार हुआ करती है?

उत्तर : हे सौम्य! प्रातः स्मरणीय भगवान व्यासदेव जी महाराज ने अपने भाष्य में ईश्वर प्रणिधान की व्याख्या करते हुए लिखा है-

सर्वकर्मणां परम गुरावीश्वरे अर्पणं तत्फल संन्यासो वा।

अर्थात् अपने समस्त कर्मों को तथा उसके फल को ईश्वर के अर्पण कर देना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। यही बात अखिल लोकनायक योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गीता में कही है—

यत्करोपि यदश्नासि, यद्ददासि जुहोषि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।
शुभाशुभफलैरेवं, मोक्ष्यसे कर्म बन्धनै।
संन्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तो मामुपैष्यसि।।

हे अर्जुन! तू जो कुछ भी करता है, जो खाता है, जो दान देता है, जो भजन करता है, जो तप करता है वह सब मुझ परमेश्वर के अर्पण कर दे।

इस प्रकार कर्मों को ईश्वर को समर्पण करने रूप संन्यास योग से युक्त हुए मन वाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्म-बन्धन से मुक्त होकर मेरे को ही प्राप्त हो जायेगा।

भगवान श्री पतंजलिदेव जी महाराज ने भी ''ईश्वर-प्रणिधानाद्वा'' तथा ''समाधिसिद्धि ईश्वर प्रणिधानाद'' अपने इन सूत्रों में ईश्वर प्रणिधान का फल समाधि सिद्धि बतलाया है। ईश्वर प्रणिधान कैसे हो सकता है? इस बात को स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखते हैं-

तस्य वाचकः प्रणवः।

तज्जपस्तदर्थ भावनम्।

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।

अर्थात् उस ईश्वर का वाचक प्रणव (ॐकार) है। अतः साधक को प्रणव का जप करना चाहिए और उसके अर्थ-स्वरूप परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए। ऐसा करने से साधना में आने वाले विघ्न दूर होते जाते हैं और परमात्मा का प्रकाश मिल जाता है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! ईश्वर के नाम तो अनेक हैं। क्या उनके जप से भी प्रणिधान हो सकता है या कि प्रणव जप से ही ऐसा होना सम्भव है?

उत्तर : हे वत्स! नाम और नामी का अभिन्न सम्बन्ध है। ईश्वर के सभी नाम एक-से हैं, किसी को बड़ा छोटा नहीं कहा जा सकता। फिर भी प्रणव (ॐ) ईश्रव का वेदोक्त नाम होने से सबसे पवित्र माना गया है, अतः इसके जप का विधान किया गया है। शास्त्रों में स्थान-स्थान पर प्रणव महिमा का वर्णन मिलता है। महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने प्रणव का महत्व बताते हुए लिखा है :—

अदृष्ट विग्रहों देवो भावग्राह्यो मनोमयः।
तस्योङ्कार स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदति।।

अदृष्ट विग्रह देव जो अव्यक्त हैं, मन की धारणा से जिसका चिन्तन किया जाता है उस परम पुरुष का नाम 'ॐ' है। ओम शब्द का उच्चारण करने से वह अव्यक्त आत्मा प्रसन्न होता है-

प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः।
शिवरुद्रादि शब्दानां प्रणवो हि परः स्मृत।।

भगवान सदाशिव का बोधक नाम ही ओम् है। शिव रुद्रादि शब्दों में उनका बोध कराने वाला नाम प्रणव ही प्रमुख है और उन प्रणव रूप महेश्वर में करोड़ों रुद्र, ब्रह्म व विष्णु का समावेश है।

कठोपनिषद् के निम्नांकित मन्त्रों में प्रणव की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है-

एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।
एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।

यह अविनाशी ॐकार ही परमात्मा का स्वरूप है और यही परब्रह्म परमेश्वर है। अतः इस तत्व को समझ कर साधक जो भी चाहे उसे प्राप्त कर सकता है।

यह ॐकार ही परब्रह्मा परमात्मा की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इससे बढ़कर और कोई आलम्बन नहीं है। अर्थात् परमात्मा के श्रेष्ठ नाम की शरण हो जाना ही उनकी प्राप्ति का एक अमोघ साधन है। इस रहस्य को समझकर

जो साधक श्रद्धापूर्वक प्रणव का जप करता है वह परमात्मा को पा जाया करता है। अत: साधक को चाहिए कि वह निरन्तर प्रणव का जप करता रहे। जप करते-करते जब वह थक जाय तो नित्य चेतन परमात्मा का ध्यान करे। क्योंकि हमारे शास्त्रों का आदेश है-

जप श्रान्तः शिवं ध्यायेत् ध्यान श्रान्तः शिवं जपेत्।
जप ध्यान समायुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति।।

योगदर्शन के सूत्र 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' की व्याख्या करते हुए भी व्यासदेव जी महाराज ने अपने भाष्य में लिखा है-

प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावना, तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च भावय-तश्चित्तमेकाग्रं सम्पद्यते।

अर्थात् प्रणव का जाप करने से और उसके अर्थस्वरूप ईश्वरका ध्यान करने से योगी का चित्त अनायास ही एकाग्र हो जाता है।

इस प्रकार ईश्वर के वाचक प्रणवादि पवित्र मन्त्रों का निरन्तर जाप करना, अतिशय श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक उसका चिन्तन करते रहना, अपने समस्त कर्मों एवं उसके फल को ईश्वर के अर्पणस कर देना तथा अपने को सर्वतोभावेन अपने इष्टदेव के हवाले कर देना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। जहाँ इस प्रकार का प्रणिधान अर्थात् पूर्ण आत्म-समर्पण हो जाय वहां अविलम्ब समाधि-लाभ हो जाया करता है। 'समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्।' इस सूत्र पर अपने भाष्य में श्री व्यासदेव जी महाराज ने लिखा है—

प्रणिधानाद् भक्ति विशेषादावर्जितः अभिमुखीकृत ईश्वरस्तमनुगृहणात्यभि ध्यानमात्रेणइदमस्याभिम-तमस्तुरिति।

अर्थात् प्रणिधान से - भक्ति विशेष से अभिमुख किया गया ईश्वर उस साधक पर अनुग्रह करता है और उसके लिये यह संकल्प करता है कि इसकी अमुक मनोकामना पूरी हो जाये। ईश्वर के संकल्प से उसे तत्काल मनवाञ्छित वस्तु (समाधि) प्राप्त हो जाती है।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

योगाचार्य श्री तपोनिधि जी का आश्रम है। यह देखो! कितनी सुन्दर योगासनों की क्लासें चल रही हैं? ओह! यहाँ के ब्रह्मचारियों के योगासन कितने सुन्दर बनते हैं। यह कौन ब्रह्मचारी है जो इतनी देर से मयूर आसन लगाये हुए मोर की आकृति में खड़ा दिखलायी दे रहा है। यह देखो! शीर्षासन के अभ्यास करने वाले ब्रह्मचारी क्रमश: श्रेणीबद्ध शीर्षासन लगाये हुए हैं। इधर देखो! यह षटकर्म करने वालों की श्रेणी हैं, जहां नेति, धोति, राजकरनी विभिन्न प्रकार की यौगिक क्रियाएँ करायी जा रही हैं। उधर प्राणायाम के अभ्यासी प्राणायाम के अभ्यास में संलग्न हैं। शरीरों में कम्प दिखलाई दे रहा है। उधर दादुरी वृत्ति हो रही है कुछ लोगों के आसन दादुरी वृत्ति के बाद उत्थान पर हैं। समीप ही योग-विद्यालय चल रहा है। यौगिक शिक्षा प्रदान करने वाले योगी अध्यापक ब्रह्मचारियों का शिक्षण कर रहे हैं। आचार्य तपोनिधि जी की पर्णकुटीर के सामने जिज्ञासु श्रोताओं की भीड़ इकट्‌ठी हो गई है। योगाचार्य के दर्शनों के लिए लोग लालायित हो रहे हैं। मद्याह्नोत्तर का समय है, जिज्ञासुओं की भीड़ को देख करके श्री योगाचार्य जी ने अपना भाषण प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा, योग के जिज्ञासु पवित्र आत्माओं! इधर-उधर के वाद-विवादों में मत पड़ो। साँख्य शास्त्र का सिद्धान्त और योग शास्त्र का सिद्धान्त दोनों एक ही वस्तु हैं। जो व्यक्ति निष्काम कर्मयोग की साधना में लगा रहता है और जिसके मन में किसी भी प्रकार की इच्छा, राग द्वेष नहीं रहे हैं वही यथार्थ में संन्यासी है और वही अपने स्वरूप में व्यवस्थित योगी है। जिसको संन्यास कहा जाता है उसी को तुम योग जानो। जो व्यक्ति अपनी कामनाओं को नहीं छोड़ सकता, वह योगी भी नहीं बन सकता। केवल मात्र बात यह है जो इतनी ही है कि—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगरूढ़स्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।

बात इतनी है कि जो लोग योगारूढ़ होना चाहते हैं, उनकी नियमित अभ्यास आदि कर्म करना ही पड़ता है, किन्तु शनैः-शनैः अभ्यास करते-करते जब वे लोग समाधिस्थ हो जाते हैं तो अपने आप ही शाश्वत शान्ति को प्राप्त हो जाते हैं। वस्तुतः तो बात यही है कि-

आपूर्यमाणचलप्रतिष्ठं-
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे-
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।
विहाय कामान्यः सर्वान्,
पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः,
स शानितमधि गच्छति।।

अर्थात् जिस प्रकार सब नदी नाले समुद्र में जाकर विलीन हो जाते हैं और अपने रूप को खो देते हैं, इसी प्रकार जिस व्यक्ति की सब कामनायें उसके अभ्यास स्वरूप मन ही मन में समाप्त हो जाती हैं वही व्यक्ति शांति को प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति सभी कामनाओं को छोड़कर निर्मम और निरंहकार होकर समाधि में लीन रहता है, वही व्यक्ति वस्तुतः शाश्वतः शान्ति को प्राप्त करता है, किन्तु वस्तुतः बात यह है-

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव, सिद्धिं समधिगच्छति।।
न हि कश्चित्मणमपि, जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।
कर्मेन्द्रियाणि संयभ्य स, आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढ़ात्मा, मिथ्याचारः स उच्यते।।
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्टते।।

अर्थात् कोई भी व्यक्ति अपने नियमित अभ्यासादि के क्रम को नियमित कर्म के रूप में नहीं करता है वह निष्काम कर्मयोग को प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि जगत गतिशील है इसमें जन्म लेने वाला कोई भी व्यक्ति बिना कर्म किये रह हीं नहीं सकता। त्रिगुणात्मिका प्रकृति मनुष्य को कर्म में लगा ही देती है। कदाचित् कोई भी व्यक्ति कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण करके बैठ जाता है और मन से इन्द्रियार्थों का चिन्तन करता रहता है, वह दम्भी कहलाता है। इसलिये उत्कृष्ट बात तो यही है कि पहले मन के द्वारा इन्द्रियों पर

पूर्ण नियन्त्रण करके कर्मयोग का अभ्यास करते हुए भी जो लोग कर्माशक्ति को छोड़ देते हैं उनका ही दर्जा ऊँचा है। इसके अतिरिक्त जो लोग केवल मात्र बाह्य वेष धारण करके कामनाओं के पीछे लगे रहते हैं एवं अपने आपको इन्द्रियार्थों में फँसाये रहते हैं वे लोग न ही संन्यासी हैं और न ही योगी हैं। यथार्थ बात तो यही है कि-

संन्यासस्तु महाबाहो, दु:खमाप्तुमयोगत:।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म, नचिरेणाधि गच्छति।।

अर्थात् बिना योग के संन्यास प्राप्त किया ही नहीं जा सकता और योग युक्त मुनि ब्रह्म को बहुत जल्दी पा जाता है। इसलिये प्रत्येक जिज्ञासु को आत्म शान्ति प्राप्त करने के लिए योगाभ्यास करना ही चाहिए। इसलिये प्रत्येक साधक को चाहिए कि-

संकल्स प्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषत:।
मन सैवेन्द्रियग्रामं, विनियम्य समन्तत:।।
शनै: शनै: रुपरमेद्बुद्धया घृतिगृहीतया।
आत्म संस्थं मन: कृत्वा, न किंचिदपि चिन्तयेत्।।
यतो यतो निश्चरति, मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।
प्रशान्तमनसं ह्येनं, योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं, ब्रह्मभूतमकल्मषम्।।
युञ्जन्नेवं सदात्मानं, योगी विगतकल्मष:।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।।

अर्थात् जो साधक संकल्प से उत्पन्न होने वाली सभी कामनाओं को बिल्कुल ही छोड़ देता है और मनसे इन्द्रिय समूह पर नियन्त्रण कर लेता है वह उत्कृष्ट है। धीरे-धीरे धैर्य के साथ बुद्धि पर नियन्त्रण करके योगी को चाहिए कि वह अपने अपको आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाये और किसी भी प्रकार का चिन्तन मन में न आने दे। हमारा यह चंचल मन जहां भी इधर-उधर भागे, वहां-वहां से लौटा करके अपने आत्म-स्वरूप में ही नियन्त्रित कर दे। जो योगी इस प्रकार अपने मन को बिल्कुल शान्त कर लेता है एवं रजोगुण से पैदा होने वाली चंचलताओं को बिल्कुल छोड़ देता है वह सर्वथा पापरहित हो करके उत्तम परम सुख को प्राप्त करता है। इस प्रकार अभ्यास करता हुआ योगी ब्रह्मानन्दरूप, परम सुख को प्राप्त होता है। एवं वह योगी—

सर्वभूतस्य मात्मानं, सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा, सर्वत्र समदर्शन:।।

अर्थात् ऐसा योगी प्राणीमात्र के अन्दर अपने आपको अवस्थित देखता है और प्राणी मात्र को अपने अन्दर देखता है। इसलिए योग के जिज्ञासु तुम सभी को योगाभ्यासरत हो जाना चाहिए क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण का यह आदेश है कि योगी का दर्जा कर्मकाण्डियों से, ज्ञानियों से सबसे ही उत्कृष्ट है और -

वेदेषु यज्ञेषु तप:सु चैव, दानेष यत् पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा, योगी परं स्थानमुपेति चाद्यम्।

अर्थात् वेद में, यज्ञ में एवं तप में जो पुण्य बल कहा है, उसका सबका उल्लङ्घन करके योगी आदि परम स्थान को प्राप्त हुआ करता है। इसलिये इस संसार में जन्म लेने वाले हर व्यक्ति को इधर-उधर की भ्रान्तियों को छोड़ करके योग-परायण बन जाना चाहिये। ताकि वह शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर सके। योगमार्ग की सबसे बड़ी विशेषता की बात तो यह है कि यदि एक व्यक्ति योग में जिज्ञासा रखता है और वह योगी बनने की इच्छा रखता है, वह भी कर्मकाण्ड के दायरे से जिज्ञासा मात्र से ही ऊँचा उठ जाता है। इसलिये प्रिय साधक वृन्द हमारी योग विद्या ही परम श्रेष्ठ है। क्योंकि इसके जान लेने पर सब कुछ जान लेता है।

श्री योगाचार्य जी के उपदेश सुनकर सुनने वाले समग्र श्रोतागण ने आकाश को जय-ध्वनियों से गुञ्जित कर दिया। योगाचार्य तपोनिधि की जय, योग-भाष्कर की जय, आदि आदि जय ध्वनियों से आकाश, निनादित हो उठा, जय-ध्वनियों के बाद वातावरण शान्त हो जाने पर एक जिज्ञासु खड़ा हो गया और हाथ जोड़ कर उसने प्रार्थना की कि हे गुरुदेव! आपने योग सिद्धान्तों की बहुत बड़ाई की, वह सुन करके हमारे मन में बहुत उत्साह बढ़ा और मन में यह पूर्ण निश्चय किया है कि हम लोग योगाभ्यास ही करेंगे। किन्तु हे गुरुदेव! कृपा करके यह तो समझाइये कि वस्तुत: योग कहते किसको हैं और योग शब्द का वस्तुत: अर्थ क्या है?

उतर : हे वत्स! तुम्हारे विचार बहुत ही अच्छे हैं। एवं तुम्हारा प्रश्न भी बिल्कुल ठीक है। हम यही देखना चाहते थे कि इतने समुदाय में यथार्थ में किसी के मन में योग पिपासा है भी या नहीं। हे पुत्र! देखो- योग शब्द इतना व्यापक व महत्वशाली है कि सभी सिद्धान्तवादियों ने उसको अपने हृदय से अपनाया है। भक्ति-योग, ज्ञान-योग, राज-योग, लय-योग, हठ-योग, शून्य-योग, इत्यादि ये सभी शब्द इसकी व्यापकता के परिचायक हैं। इस संसार में जन्म लेने वाला कोई भी प्राणी ऐसा नहीं होगा, जिसको योग की सच्ची जिज्ञासा न हो किन्तु ''मुण्डे, मुण्डे मतिर्भिन्ना'' के नियमानुसार हरेक व्यक्ति ने इसको अपनी मति के अनुसार प्रयोग किया है। जो लोग हृदय प्रधान हैं और ईश्वर की

अर्चना, वंदना आदि के रूप में लक्षय प्राप्ति के लिए संलग्न हैं। उन्होंने इसको भक्ति-योग तथा जो लोग ज्ञान निष्ठा प्रधान हैं वे महावाक्यों का मनन करते हुए भी वेदान्त सिद्धान्तों के अनुसार आत्म साक्षात्कार के लिये प्रयत्नशील हैं, उन्होंने ज्ञान योग से इसी प्रकार से जो लोग ईश्वरार्पित बुद्धि से, निष्कामभाव से कर्म करते हुए, कर्म बन्धन से छूटकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं उन्होंने इसे कर्मयोग के नाम से अपनाया। इसके अतिरिक्त योग के व्यापक प्रभाव और महानता को देख करके कुछ दम्भी लोगों ने भी इस शब्द को अपना कर यक्षिणी, पिशाचिनी आदि छोटी-छोटी तामस राजस शक्तियों की आराधना कर सिद्धियों को पाकर संसार के भोले-भोले प्राणियों को चमत्कार में डालकर अपनी दाम्भिक पूजा कराई और अपने को योगी सिद्ध किया। इसके अतिरिक्त जिन्होंने हठ योग के कुछ साधनों को कहीं से सीख लिया, उन्होंने योग आश्रम कामय कर लिये और केवल मात्र नेति-धौति आदि षट्कर्म व आसन बन्ध मुद्राओं के द्वारा शारीरिक साधनायें ही उन लोगों का परम लक्ष्य बन गया। इसी प्रकार से बिना अष्टांग योग की साधना के ही किनहीं लोगों ने भू-गर्भ, जलगर्भ आदि समाधियाँ लगाकर योग के व्यापक शब्द से लाभ उठाया। यह सब योग का वास्तविक अर्थ न समझने से या समझकर भी उसकी लापरवाही के करने कारण हुआ।

वस्तुत: ठीक प्रकार से विचार कर देखा जाय तो योग शब्द का अर्थ है, मिलाने वाली क्रिया। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार युज धातु से सन्धानाय शब्द का प्रयोग होता है। जिसका अर्थ है मिलना। युज् समाधों से योग का अर्थ है समाधि। योगाचार्य भगवान श्री पतञ्जलि जी ने ''योगाश्चित्त वृत्ति निरोध:'' कह करके योग शब्द की अभिव्यक्ति की। निरोध शब्द का अर्थ हमारी शास्त्रीय परिभाषा में निरोध- समाधि से व इसी प्रकार योग शब्द का अर्थ योग-समाधि आदि वचनों से समाधि ही सिद्ध होता है। समाधि शब्द का अर्थ उपनिषदों में समाधि समतावस्था जीवात्मन-परमात्मन: से जीवात्मा व परमात्मा की समतावस्था का नाम ही है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! आपने उपनिषदों के

सर्वभूतस्थ मात्मानं, सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा, सर्वत्र सदर्शन:।।

अर्थात् ऐसा योगी प्राणीमात्र के अन्दर अपने आपको अवस्थित देखता है और प्राणी मात्र को अपने अन्दर देखता है। इसलिए योग के जिज्ञासु तुम सभी को योगाभ्यास में रत हो जाना चाहिए क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण का यह आदेश है कि योगी का दर्जा कर्म काण्डियों से, ज्ञानियों से सबसे ही उत्कृष्ट है और -

वेदेषु यज्ञेषु तप:सु चैव, दानेष यत् पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा, योगी परं स्थानमुपेति चाद्यम्।

अर्थात् वेद में, यज्ञ में एवं तप में जो पुण्य बल कहा है, उसका सबका उल्लङ्घन करके योगी आदि परम स्थान को प्राप्त हुआ करता है। इसलिये इस संसार में जन्म लेने वाले हर व्यक्ति को इधर-उधर की भ्रान्तियों को छोड़ करके योग-परायण बन जाना चाहिये। ताकि वह शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर सके। योगमार्ग की सबसे बड़ी विशेषता की बात तो यह है कि यदि एक व्यक्ति योग में जिज्ञासा रखता है और वह योगी बनने की इच्छा रखता है, वह भी कर्मकाण्ड के दायरे से जिज्ञासा मात्र से ही ऊँचा उठ जाता है। इसलिये प्रिय साधक वृन्द हमारी योग विद्या ही परम श्रेष्ठ है। क्योंकि इसके जान लेने पर सब कुछ जान लेता है।

श्री योगाचार्यजी के उपदेश सुनकर सुनने वाले समग्र श्रोतागण ने आकाश को जय ध्वनियों से गुञ्जित कर दिया। योगाचार्य तपोनिधि की जय, योग-भाष्कर की जय, आदि आदि जय ध्वनियों से आकाश, निनादित हो उठा। जय-ध्वनियों के बाद वातावरण शान्त हो जाने पर एक जिज्ञासु खड़ा हो गया और हाथ जोड़ कर उसने प्रार्थना की कि हे गुरुदेव! आपने योग सिद्धान्तों की बहुत बड़ाई की, वह सुन करके हमारे मन में बहुत ही उत्साह बढ़ा और मन में यह पूर्ण निश्चय किया है कि हम लोग योगाभ्यास ही करेंगे। किन्तु हे गुरुदेव! कृपा करके यह तो समझाइये कि वस्तुत: योग कहते किसको हैं और योग शब्द का वस्तुत: अर्थ क्या है?

उत्तर : हे वत्स! तुम्हारे विचार बहुत ही अच्छे हैं। एवं तुम्हारा प्रश्न भी बिल्कुल ठीक है। हम यही देखना चाहते थे कि इतने समुदाय में यथार्थ में किसी के मन में योग पिपासा है भी या नहीं। हे पुत्र! देखो— योग शब्द इतना व्यापक व महत्वशाली है कि सभी सिद्धान्तवादियों ने उसको अपने हृदय से अपनाया है। भक्ति-योग, ज्ञान-योग, राज-योग, लय-योग, हठ-योग, शून्य-योग, इत्यादि ये सभी शब्द इसकी व्यापकता के परिचायक हैं। इस संसार में जन्म लेने वाला कोई भी प्राणी ऐसा नहीं होगा, जिसको योग की सच्ची जिज्ञासा न हो किन्तु ''मुण्डे, मुण्डे मतिर्भिन्ना' के नियमानुसार हरेक व्यक्ति ने इसको अपनी मति के अनुसार प्रयोग किया है। जो लोग हृदय प्रधान हैं और ईश्वर की अर्चना, वंदना आदि के रूप में लक्ष्य प्राप्ति के लिए संलग्न हैं। उन्होंने इसको भक्ति-योग तथा जो लोग ज्ञान निष्ठा प्रधान हैं वे महावाक्यों का मनन करते हुए भी वेदान्त सिद्धान्तों के अनुसार आत्म साक्षात्कार के लिये प्रयत्नशील

हैं, उन्होंने ज्ञान योग से इसी प्रकार से जो लोग ईश्वरार्पित बुद्धि से, निष्कामभाव से कर्म करते हुए, कर्म बन्धन से छूटकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं उन्होंने इसे कर्मयोग के नाम से अपनाया। इसके अतिरिक्त योग के व्यापक प्रभाव और महानता को देख करके कुछ दम्भी लोगों ने भी इस शब्द को अपना कर यक्षिणी, पिशाचिनी आदि छोटी-छोटी तामस राजस शक्तियों की आराधना कर सिद्धियों को पाकर संसार के भोले-भाले प्राणियों को चमत्कार में डालकर अपनी दाम्भिक पूजा कराई और अपने को योगी सिद्ध किया। इसके अतिरिक्त जिन्होंने हठ योग के कुछ साधनों को कहीं से सीख लिया, उन्होंने योग आश्रम कायम कर लिये और केवल मात्र नेति-धौति आदि षट्कर्म व आसन बन्ध मुद्राओं के द्वारा शारीरिक साधनायें ही उन लोगों का परम लक्ष्य बन गया। इसी प्रकार से बिना अष्टांग योग की साधना के ही किन्हीं लोगों ने भू-गर्भ, जलगर्भ आदि समाधियाँ लगाकर योग के व्यापक शब्द से लाभ उठाया। यह सब योग का वास्तविक अर्थ न समझने से या समझकर भी उसकी लापरवाही के करने कारण हुआ।

वस्तुत: ठीक प्रकार से विचार कर देखा जाय तो योग शब्द का अर्थ है, मिलाने वाली क्रिया। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार युज धातु से सन्धानाय शब्द का प्रयोग होता है। जिसका अर्थ है मिलना। युज् समाधों से योग का अर्थ है समाधि। योगाचार्य भगवान श्री पतञ्जलि जी ने ''योगाश्चित्त वृत्ति निरोध:'' कह करके योग शब्द की अभिव्यक्ति की। निरोध शब्द का अर्थ हमारी शास्त्रीय परिभाषा में निरोध- समाधि से व इसी प्रकार योग शब्द का अर्थ योग-समाधि आदि वचनों से समाधि ही सिद्ध होता है। समाधि शब्द का अर्थ उपनिषदों में समाधि समतावस्था जीवात्मन-परमात्मन: से जीवात्मा व परमात्मा की समतावस्था का नाम ही है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! आपने उपनिषदों के सिद्धान्तानुसार जो योग की परिभाषा बताई वह बिल्कुल ठीक है, किन्तु आपके ही मुखारबिन्द से हमने सुना है कि योगाचार्य श्री पतंजलि जी महाराज चित्तवृत्ति निरोध को योग बतलाते हैं। इनमें से हे गुरुदेव कौनसी बात सत्य है? कृपाकर समझा दीजिये।

उत्तर : हे पुत्र! तुम्हारा प्रश्न ठीक है। भगवान् पतंजलिजी महाराज ने 'योग: चित्तवृत्ति निरोध:' कह करके ही योगग की परिभाषा की है। चित्तवृत्ति निरोध शब्द का अर्थ है चित्तवृत्तियों का नितराम् विरोध अर्थात् चित्तवृत्तियों का समूलोन्मूलन। 'योगाश्चित्त वृत्ति निरोध:'। इस सूत्र में केवलमात्र चित्त वृत्ति निरोध: को योग कहा है न कि 'सर्व इस सूत्र में सर्व शब्द का ग्रहण नहीं है। इस लिए योग की संप्रज्ञात व असंप्रज्ञात दोनों ही अवस्थाओं का नाम योग शब्द वाच्य है। इसी कारण से 'वितर्क' विचारा-नन्दास्मितानुगमात् संप्रज्ञात: कह करके संप्रज्ञात योग व 'विराम-प्रत्ययाभ्यास पूर्व: संस्कार शेषोऽन्य: कह करके असंप्रज्ञात योग का कथन किया है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! मैं आपने इन कठिन शब्दों को टीक प्रकार से समझ नहीं पाया कि असम्प्रज्ञात का क्या अर्थ है एवं असम्प्रज्ञात किसको कहते हैं? कृपाकर भली प्रकार से समझाकर मुझे संप्रज्ञात एवं असंप्रज्ञात शब्दों का अर्थ और इन समाधियों का रूपक समझा दीजिये। ताकि मैं इसको भली प्रकार समझ करके अभ्यास कर सकूँ व अपने जीवन को इस अनमोल योगनिधि को पाकर कृतकृत्य बना सकूँ।

उत्तर : हे पुत्र! ठीक है, योग की इन दोनों समाधियों को तुम्हारा समझ लेना ही ठीक है तभी तुम उन्नति कर सकोगें देखो! संप्रज्ञात समाधि एवं असंप्रज्ञात समाधि इन दोनों समाधियों को एकाग्रावस्था और निरोधावस्था के रूप में समझाया गया है। एकाग्रावस्था उसको कहते हैं, जिसमें योगी का मन धारणा के बल से इकट्ठा होकर अन्तर जगत के दृश्यों को देखने लगता है और उन दृश्यों को देख करके बाह्य जगत को बिल्कुल-बिल्कुल भूल जाया करता है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! दृश्य तो नजारे को कहते हैं। बाह्य और अभ्यान्तर से आपका क्या अभिप्राय? मैं इस बात को भली प्रकार से समझ नहीं पाया हूँ, कृपा करके मुझे समझा दीजिये कि बाह्य और अभ्यान्तर दृश्य से आपका क्या अभिप्राय है? अभी तक तो मैं इस दृष्टि-पथ में आने वाले बाह्य दृश्य को ही मैं दृश्य भी होता है? हमें तो आंख, नाक, कान आदि बन्द करने पर कुछ भी नहीं दीखता। कृपाकर मुझे भली प्रकार से समझाइये कि अभ्यान्तर दृश्य क्या होता है?

उत्तर : हे पुत्र! देखो आभ्यान्तर दृश्य तुम समझ नहीं पाये हो, हम अपनी आंखों से जिस प्रकार से बाहर के नजारे देखते हैं रंग, नाच, खेल कूद देखते हैं और कानों से बड़े-बड़े सुरीले राग नृत्य आदि की ध्वनियां सुनते हैं एवं जिह्वा से बड़े-बड़े रसीले पदार्थ खाते हैं एवं विविध प्रकार के स्वाद लेते हैं। नासिका से बड़ी-बड़ी दिव्य सुगन्ध सूँघते हैं और चमड़ी से बड़े-बड़े दिव्य सुगन्ध सूँघते हैं और चमड़ी से बड़े-बड़े स्पर्श करते हैं, आलिङ्गन करते हैं, आशीर्वाद देते हैं एवं जितने भी पंच महा भूतात्मक एवं त्रिगुणात्मक एवं गुण प्रवृत्तियों को बढ़ाने वाली इन्द्रियों से देखे जाने वाले नजारे हैं वे ही सब दृश्य दो भागों में बँट जाते हैं- अन्तर और बाह्य। एक तो वह जो इन्द्रियों के भीतरी भाग से देखा जा सकता है। दूसरा वह आमतौर पर अपनी पांचों ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा देखते ही रहते हैं।

प्रश्न : हे गुरुदेव! यह सब नजारे तो हम लोग देख ही रहे हैं, फिर इनको बहिरंग रूप से देखने से क्या प्रयोजन है?

उत्तर : हे पुत्र! देखो ऐसी बात नहीं है, ये दृश्य भोग भी देता है और अपवर्ग भी देता है। पढ़ो भगवान पतंजलिदेव का यह सूत्र–

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं मोगापवर्गार्थं दृश्यम्।।

अर्थात् प्रकाश क्रिया स्थिति से एवं पंच महाभूतात्मक और इन्द्रियात्मक ये नजारा मनुष्य को भोग और अपवर्ग दोनों देता है। बाह्य दृष्टि से देखता हुआ, सुना हुआ, स्पर्श किया हुआ, गन्ध ग्रहण किया हुआ और रस ग्रहण किया हुआ, यह भोग का दाता है और यदि इसी दृष्टि से नजारे को इन्द्रियों के इन भीतरी भागों से ग्रहण कर लें तो यही अपवर्ग अर्थात् मुक्ति का दाता बन जाता है। देखो, जङ्गलों में रहने वाले मुनि लोग इसी दृश्य के दृष्टा बन करके योगाभ्यास किया करते हैं और मोक्ष मार्ग का उद्घाटन करते हैं। देखो, आनन्दकन्द अखिलात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी दृश्य के भावों को इस प्रकार समझाया है–

या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्तिं संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः।।

अर्थात् प्राणीमात्र की जो रात है मुनि लोग उसमें जगते रहा करते हैं और जिसमें संसार के मनुष्य मात्र जगते हैं, उसमें मुनि सोया करते हैं।

प्रश्न : हे गुरुदेव! यह आप क्या बात कह रहे हैं। हमें तो रात में कोई भी जागता नहीं दिखलाई देता। चाहे ऋषि–मुनि हो या नाधारण मनुष्य, हमें तो रात को सभी सोते दिखाई देते हैं।

उत्तर : हे पुत्र! तुम्हारा यह प्रश्न बिल्कुल ठीक है, क्योंकि तुम इस विषय को अभी तक समझते नहीं हो। जिस समय मनुष्य अन्तर्द्रष्टा बनता है और भीतर दिव्य दृश्यों का दर्शन प्राप्त करने लगता है, उस समय उसको बाह्य जगत का बोध नहीं रहता। इसका सही–सही अर्थ यही है कि वह बाहरी दुनियां की चहल–पहल, नाच–कूद, रंग–बिरंगे दृश्यों को बिल्कुल–बिल्कुल भूल जाता है। वह केवल अपने आत्म–चिन्तन में ही मग्न रहा करता है। इसी का अर्थ संसारी जिसमें जगते हैं, मुनि उसमें सोया करते हैं और जिस अध्यात्म चिन्तन में, अर्थात् भीतरी दृश्यों में मुनि जागता रहा करता है, उन्हीं दृश्यों में संसार वाले सोया करते हैं अर्थात् संसार वालों को वह नजारे दिखलाई नहीं देते।

प्रश्न : हे गुरुदेव! मैंने यह भी सुना है कि हम लोग संसारी, रात में सोया करते हैं एवं वृन्दावन और ऋषिकेश आदि में साधु लोग रात में जागकर अपना भजन, ध्यान क्रिया करते हैं और निद्रा का आलस्य उतारने के लिए वे लोग दिन में सो जाया करते हैं?

उत्तर : हे वत्स! तुम्हारी यह बात भी ठीक हैं, वह भी ठीक ही है, क्योंकि रात्रि का वातावरण शान्त होता है, सांसारिक लोग सोये रहते हैं, उस समय मन में एकाग्रता उत्तम होती है। भजन करने के लिए वह वातावरण ठीक रहता है, किन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने उपरोक्त श्लोक अध्यात्म–चिन्तन के लिए एवं मनोवृत्तियों को शान्त रखने के लिए ही कहा है, ताकि योगी अपने अन्दर बाह्य दुनियाँ के नजारे न देखकर अन्तर्दृश्यों को देखें।

प्रश्न : हे गुरुदेव! आप बार–बार चित्त की एकाग्रावस्था एवं एकाग्रता को समझा रहे हैं, इसका क्या अर्थ है? इसका तो अर्थ यह मालूम पड़ता है कि चित्त की और भी अवस्थायें होती हैं।

उत्तर : हां–हां पुत्र! चित्त त्रिगुणात्मक है और वह त्रिगुणात्मक चित्त अपने–अपने गुणों को प्रधानतानुसार चित्त की अन्य–अन्य भूमिकाओं में बँटा रहता है। देखो! हम तुम्हें चित्त की भूमिकाओं को समझाते हैं। सारे संसार के प्राणियों के चित्त पांच अवस्थाओं में विभक्त रहा करते हैं, उनमें से–

(१) मूढ़ावस्था के प्राणी :

जिनमें तमोगुण प्रधान रहता है। तथा रज और सत्व, गौण हो जाया करते हैं। इस अवस्था के चित्त वालों की प्रवृत्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से आवृत रहा करती है और वे आलस्य तन्द्रा में घिरे रहते हैं, किसी भी प्रकार उनकी उदरपूर्ति होती रहे। इसके अतिरिक्त किसी के हिताहित लोक परलोक से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(२) क्षिप्तावस्था के प्राणी :

जिनमें रजोगुण प्रधान रहता है। तमोगुण व सतोगुण गौण रहने के कारण इनके मन से चंचलता, दुःख–शोक, चिंतायें बनी रहती हैं। लौकिक साधना ही इनका परम लक्ष्य रहता है। सांसारिक कार्य धन्धे (बिजनेस) व्यापार के अतिरिक्त परलोक आदि में इनकी आस्था नहीं होती।

(३) विक्षिप्तावस्था के प्राणी :

जिनमें सतोगुण प्रधान रहता है, रजोगुण और तमोगुण गोण रहता है। इनके मन में पूर्ण प्रसन्नता, क्षमा, दया, परोपकार की भावना और साधनों में संलग्नता, ज्ञान, धर्म वैराग्य में पूरी–पूरी अभिरुचि रहती है। इनका मन थोड़ा–थोड़ा एकाग्रता की ओर चलता है तथा शान्त रहता है। ये लोग स्वाध्याय, संकीर्तन, उपासनाएँ आदि करते हैं। किन्तु एकाग्रता के बिना इस भूमिका के प्राणी योग श्रेणी के नहीं माने जाते।

(४) एकाग्रावस्था के प्राणी :

जिनमें सतोगुण प्रधान रहता है। रजोगुण और तमोगुण वृत्ति मात्र में शेष रहते हैं। इनका मन द्रष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् हो करके अपर वैराग्य प्राप्त होता है। मनुष्य का मन बड़ा अद्‌भुत और शक्तिशाली है। वस्तुत: विचारकर देखा जाय तो प्रभु की सृष्टि के बड़े-बड़े अद्‌भुत कार्य मन की एकाग्रता से ही सम्पन्न होते हैं।

(५) निरोधावस्था के प्राणी :

जिनमें बाहर से गुणों का परिणाम बन्द होकर चित्त सत्व में निरोध परिणाम संस्कार मात्र से शेष रह जाता है और दृष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। ऊपर वर्णन की हुई पांचों प्रकार की अवस्थाओं में केवलमात्र एकाग्रावस्था को ही योग श्रेणी में लिया है। संसार का कोई भी प्राणी किसी प्रकार की साधनायें करता रहे, जब तक मन में एकाग्रता का उदय नहीं होता तब तक उसका योग में प्रवेश नहीं माना जा सकता।

प्रश्न : हे गुरुदेव! आपने सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात का रूपक मुझे समझा तो दिया है, किन्तु कृपा करके और भी स्पष्टीकरण के साथ इनके भेद, उपभेद एवं किस तरह से साधक निरोध समाधि तक पहुँचता है कृपा कर यह सब बातें और समझा दीजिये। आपकी बहुत कृपा होगी कि आप इस योग तत्व को समझाकर अपने इस बालक को कृत-कृत्य बना दें।

उत्तर : हे पुत्र देखो! भगवान् पतंजलिदेव ने योग के आठ अङ्गों का निम्नांकित सूत्र में वर्णन किया है। जिनका सही रूप से पालन करता हुआ मनुष्य योग के सही शब्दों को समझ सकता है। सूत्र इस प्रकार है—

यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा ध्यान समाधयो दृष्टावङ्गानि।

कह करके अष्टाङ्ग योग का वर्णन किया। अङ्ग-अङ्गी से अलग नहीं होते, इस विचार से अष्टांग योग के किसी भी एक अङ्ग का पालन करने वाला भी योग का विद्यार्थी तो है ही। उनमें से यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार, ये पांच अङ्ग धारणा, ध्यान, समाधि की अपेक्षा बहिरङ्ग हैं और धारणा, ध्यान, सम्प्रज्ञात समाधि, असम्प्रज्ञात की अपेक्षा बहिरङ्ग है। भगवान् पतञ्जलिदेव जी के शब्दों में किसी एक में चित्त को बांधना धारणा कहलाती है। 'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' से ही संप्रज्ञात का श्रीगणेश होता है। धारणा सिद्ध हो जाने पर मन के अन्दर योग प्रवेश की योग्यता हो जाती है। धारणा की सिद्धि से प्राप्त हुई योग्यता वाला मन, जिसकी वृत्ति अन्तरमुखी हो चुकी है, संप्रज्ञात योग का अधिकारी बनता है। सम्प्रज्ञात योग का अधिकारी बनता है। सम्प्रज्ञात योग का अभ्यासी अपने प्रथम अभ्यास में वितर्कानुगम योग का अभ्यास करता है, जिसमें वह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पांच महाभूतों का तथा स्पर्श, रूप, रस, गंध इनके गुणों को प्रत्यक्ष करता है। इस वितर्कानुगम योग में पंचभूत और पांच भूतों से होने वाले सब विस्तार का और इनके सब विषयों को पूर्ण प्रत्यक्ष करता है। साधक अपने अभ्यास से पृथ्वी तत्व में पहाड़, सुरम्य वन, उपवन और नाना प्रकार की दिव्य सुगंधों को अनुभव करता है तथा जल तत्व में महान् नाना प्रकार के समुद्र और दिव्य रसों का अनुभव करता है। अग्नि तत्व में अनेक विधि ज्वालाओं और महान् दिव्य रूपों का अनुभव करता है। वायु तत्व में दिव्य स्पर्शों का अनुभव करता है और आकाश तत्व में शून्य आकाश और आकाश से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के शब्दों को सुनता है। इस वितर्कानुगत योग में सवितर्क और निर्वितर्क दो अलग-अलग भेद हैं। उसमें सवितर्क समाधि:- 'उत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पै: संकीर्णा सवितर्कासमापति:' अर्थात् वितर्कानुगत में जिस समाधि में शब्द अर्थ और उसका ज्ञान मिला हुआ सा होने पर बराबर अलग-अलग भाषित होते रहें, वह सवितर्क समाधि कहलाती है। इसका अभ्यास करते-करते चित्त ध्येयाकार हो जाय, शब्द, अर्थ, ज्ञान न रहे, तब वह निर्वितर्क समाधि कहलाती है। इस विषय को इस प्रकार समझ लेना चाहिए जैसे साधक के ध्यान में एक गाय है, गाय एक शब्द है और लम्बे गले वाली, दो सीगों वाली, सफेद रंग, चार पैरों वाली गाय, एक पशु है और उस गाय के मन में ज्ञान होना कि वह एक गाय है यही ज्ञान है। ये तीनों शब्द, अर्थ और ज्ञान एक विषयक होते हुए भी अलग-अलग समझ में आते रहें, ऐसी स्थिति का नाम सवितर्क समाधि है। जिसमें साधक का मन ध्येयाकार बन जाए। शब्द, अर्थ और ज्ञान अलग-अलग अनुभव में न आकर अर्थमात्र भाषित होता रहे वह निर्वितर्क समाधि है।

स्मृति परिशुद्धौ स्वरूप शून्येवार्थमात्र निर्भासा निर्वितर्का।

विचारानुगत-योग

निर्वितर्क समाधि पराकाष्ठा में पहुँच जाने के बाद मनुष्य का मन सूक्ष्म विषयों में प्रवेश करता है। अभी तक वितर्कानुगत योग में उसने स्थूल महाभूतों का और उनके विषयों का प्रत्यक्ष किया था, किन्तु अब विचारानुगत योग में महाभूतों अपेक्षा उनसे सूक्ष्म तन्मात्र का प्रत्यक्ष करता है। जैसे वितर्कानुगत समाधि में स्थूल महाभूत आकाश व उसके गुण शब्द का अनुभव किया था अब विचारानुगत में सूक्ष्म आकाश या शब्द तन्मात्र का अनुभव करेगा। इसी प्रकार

वायु में वायु तत्व या रूप तन्मात्र जल में सूक्ष्म जल तत्व या रस तन्मात्र, पृथ्वी में सूक्ष्म पृथ्वी या गन्ध तन्मात्र का अनुभव करेगा। इसके साथ-साथ दस इन्द्रियों का मन, बुद्धि, अहंकार का प्रत्यक्ष करेगा। इसी प्रकार इन सूक्ष्म विषयों में होने वाली समाधि का नाम सविचार समाधि है। जिस प्रकार वितर्कानुगत समाधि के सवितर्क और निर्वितर्क के दो भेद हैं। इसी प्रकार विचारानुगत समाधि में (१) सविचार (२) निर्विचार दो भेद है। सूक्ष्म विषयत्व चर्लिङ्ग पर्यवसानम्।'' जैसे हमने किसी भी तन्मात्र की सूक्ष्म ध्यान प्रारम्भ किया- उसका अनुभव देश, काल व निमित्त से सीमित अनुभव होता रहे व ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों अलग-अलग भाषित होते रहें, इसका नाम सविचार समाधि है। जिस समाधि में ध्येय विषय देश काल निमित्त से सीमित न दिखलाई दे तो वह निर्विचार समाधि कहलायेगी। इस विचारनुगत योग में मनुष्य प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयवों का पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है और सूक्ष्मता की परिधि को पहुँच जाता है। क्योंकि योगी इसमें सूक्ष्म मनका सूक्ष्म इन्द्रियों का सूक्ष्म बुद्धि और अहंकार का पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है। इसलिये इसमें दैविक शक्तियों का विकास हो जाता है। इस स्थिति के योगी को दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, दूर-स्पर्श आदि स्वत: ही होने लगता है। इसके साथ-साथ सूक्ष्म देव लोकादि भी अनुभव में आने लगते हैं और उन सब मायिक स्थानीय देवताओं को देख कर भी योगी अपने आपको इन सबसे उत्कृष्ट देखता है। बुद्धि के आमोद-प्रमोद आह्लादि सूक्ष्म विषयों को प्रत्यक्ष करता है और अपने आपको पूर्ण आनंदमय देखता है। ऐसी स्थिति में देव लोग अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। उस समय योगी को बहुत सचेत होकर रहने की आवश्यकता है। भगवान पतञ्जलि जी की आज्ञा है कि- ''**स्थान्युपनिगन्त्रेण सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात**'' ये चारों प्रकार की समाधियाँ सबीज कहलाती हैं। यहाँ तक कि संसार का बीज बना रहता है। मनुष्य संसार से परे नहीं हो पाता, इसलिये स्थूलार्थ में सवितर्क और निर्वितर्क और सूक्ष्मार्थ में सविचार और निर्विचार समाधियाँ सबीज हैं, किन्तु निर्विचार समाधि ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-त्यों उसकी स्थिति निर्मल बनती चली जाती है। पुरुष को प्रकृति पर्यन्त सब सूक्ष्म स्थूल पदार्थ शीशे की तरह चमकते हुए दिखाई देने लगते हैं, तब ''**निर्विचार वैशारघेऽध्यात्म प्रसाद: निर्विचार**'' समाधि की निर्मलता में योगी को स्फुट-प्रज्ञा-लोक होता है।

प्रज्ञा प्रसादमारुह्या, शौच्य: शोचतो जनान।
भूमिष्ठानिव शैलस्थ:, सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

ऐसी स्थिति में योगी सब चिन्ताओं से रहित होकर सांसारिक प्रवाह में बहते हुए प्राणियों को इस प्रकार देखता है जिस प्रकार पहाड़ पर खड़ा होकर मनुष्य जमीन वालों को देखता है, इस स्थिति समाधिस्थ योगी को ''ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा:'' ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है। उस समय योगी कुछ देखता है सत्य देखता है। इस बुद्धि का विषय श्रुत और अनुमान से बहुत आगे का होता है। इसके संस्कार अन्य संस्कारों को रोक देते हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धि के आमोद-प्रमोद आह्लादित विषयों में ज्योंही योगी संयम करता है त्योंही अपने आपको आनन्दमय देखने लगता है, यही सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरी स्थिति- आनन्दानुगत की है। इसी प्रकार पुरुष की दृढ़ शक्ति और बुद्धि की दर्शन शक्ति जब एक रूप में भाषित होती है और उसमें योगी संयम करता है, तब वह अस्मितानुगत योग को प्राप्त होता है। इस अस्मितानुगत योग में पुरुष की दृढ़ शक्ति और बुद्धि की दर्शन शक्ति क्योंकि एकाकार भाषित होती है, इसलिये इसको जड़-चेतन की गाँठ कहा गया है। विवेक ख्याति के द्वारा ही स्फुट प्रज्ञा लोक ही जाने के बाद विवेक ख्याति से ही जड़-चेतन की गाँठ खुल जाती है और ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा अन्य संस्कारों का प्रतिरोध होने के बाद निर्बीज समाधि को योगी प्राप्त करता है, यही परम पुरुषार्थ है।

हे परम पूज्य गुरुदेव! आपने बहुत अच्छी प्रकार से सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात योग की सभी भूमिकाएँ समझायीं। हे गुरुदेव! मैं यह भली प्रकाह से समझ गया हूँ कि आप मुझ अधम को इस योग शिक्षा के द्वारा इस संसार सागर से अवश्य-अवश्य उभार लेगे। ओह! कितने योग के सूक्ष्म विषय आपने समझाये हैं, इतना कोई भी व्यक्ति यथार्थ में समझा नहीं सकता। मैं आपकी आज्ञा और इस पवित्र शिक्षा को प्राप्त करके अवश्य ही पूर्ण रूपेण को प्राप्त करूँगा। इसी प्रकार योगाचार्य तपोनिधि जी का अपने नित्य कर्म का समय हो गया। उपस्थित सभी श्रोताओं ने योगाचर्य तपोनिधि जी की जय ध्वनि का उच्चार किया एवं करतल ध्वनि से सभी ने मिल करके आकाश तल को निनादित कर दिया—

सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मां कश्चिद्दुख भागभवेत्।।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

योगाचार्य श्री तपोनिधि जी का पवित्र आश्रम है। भगवती भागीरथी का अपूर्व शोभा वर्णनातीत है। इधर-उधर से साधु, संत महात्मा अपने नैत्यिक स्नान पूजन में लगे हुए हैं। आश्रम में सत्संग का अपूर्व समारोह है। अपने-अपने मति भेद के अनुसार विभिन्न प्रान्तों से आये हुए वक्ता लोग अपने-अपने विचार प्रगट कर रहे हैं। योगाचार्य श्री तपोनिधि जी का आज का उपदेश सुख और शांति से भरा हुआ था। उन्होंने आज अपने उपदेश में सत्य और अस्तेय के मौलिक सिद्धान्त सुनाये। सभी श्रोताओं की मानस शंकायें सुनने मात्र से स्वत ही पूर्ण हो गयीं, फिर भी व्याख्यान के बाद शंका समाधान का समय रखा गया था। इस शंका समाधान के समय में अपनी-अपनी मतिभेद के अनुसार साधकों ने प्रश्न करने प्रारम्भ कर दिये। इन सभी में से ब्रह्मदत्त नाम के एक योग-जिज्ञासु ब्रह्मचारी ने गुरुदेव के सामने नम्र भाव से प्रश्न किया।

प्रश्न : हे गुरुदेव! सत्य और अस्तेय के पवित्र व्याख्यान को सुनकर मेरे मन में बहुत बड़ी प्रसन्नता बढ़ी और सभी संशयों का नाश हो गया। अब कृपा करके आप मुझे यमों में चौथे यम ब्रह्मचर्य के विषय में कुछ शिक्षा दीजियेय जिससे कि मैं ब्रह्मचर्यव्रत की शिक्षा को पाकर अपने आपको कृतार्थ कर सकूँ। उसके साथ ही साथ मैं अपरिग्रह के स्वरूप को भी जानने की इच्छा रखता हूँ।

उत्तर : हे पुत्र! ब्रह्मचर्य की महिमा से हमारे शास्त्र ओत-प्रोत हैं, किन्तु आजकल के समाज में दुर्व्यसनों के अधिक मात्रा में बढ़ जाने के कारण ब्रह्मचर्य जीवन प्राय: लुप्त सा ही है। वीर्य धारण करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। वीर्य को हमारे शास्त्रों में ब्रह्मरूप से कथन किया है। जो वीर्य को धारण करे वह ब्रह्मचारी कहलाता है। वीर्य हमारे शरीर में सातवीं धातु है उसका स्वरूप हमारे शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है—

शुक्रं सोम्यं सितं स्निग्धं बल पुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भबीजं वपुः सारो जीवनाश्रम उत्तमः।।

मनुष्य जब अन्न सेवन करता है उससे रस बनता है, रस के बाद रक्त, रक्त के बाद मांस, मांस के बाद मेद, मेद के बाद हड्डी (अस्थि), अस्थि के बाद मज्जा, मज्जा से वीर्य बनता है और वीर्य से ओज की उत्पत्ति होती है। जो मनुष्य को देदीप्यमान रखता है। वीर्य सम्पूर्ण शरीर को आधार, जीवन का आशय और परम पुष्टिकर है। जिस प्रकार से दूध में घी और ईख के रस में गुड़ व्यापक रहता है। इसी प्रकार से वीर्य सारे शरीर में व्यापक रहता है। इसी से मन और बुद्धि का पूर्ण विकास होता है। यही सर्व सिद्धियों का मूल है। शिव-संहिता में भगवान शंकर ने ऊँचे शब्दों में आज्ञा की है।

मूलम्-मरणं बिन्दु पातेन, जीवनं बिन्दु धारणे।
तस्मादति प्रयत्नेन, कुरुते बिन्दुधारणाम्।। 88
मूलम्-जायते भ्रियते लोके, बिन्दुना नात्र संशयः।
एतज्ज्ञात्वा सदा योगी, बिन्दुधारणमाचरेत।। 81
मूलम्-सिद्धे बिन्दौ महायत्ने, किं न सिध्यति भूतले।
यस्य प्रसादान्महिमा, ममाप्येदृशो भवेत।।10

अर्थात् बिन्दु के पतन से मरण व बिन्दु के धारण से जीवन होता है। प्राणी का जन्म मरण बिन्दु से ही होता है। इसलिये योगी को प्रयत्न करके बिन्दु धारण करना चाहिए। यत्नपूर्वक जय कर लेने पर संसार में कोई भी ऐसा कार्य नहीं जो सिद्ध न किया जा सके। भगवान कहते हैं- मेरा जो कुछ प्रभाव संसार में दिखलाई देता है वह केवल वीर्य धारण से ही है। ब्रह्मचर्य के नियम बहुत बड़े-बड़े हैं। शास्त्र विधि से ब्रह्मचारियों की दो संज्ञायें रखी गई हैं- (१) नैष्ठिक, (२) उपकुर्वाण।

प्रश्न : हे गुरुदेव! आपने ब्रह्मचारी शब्द की व्याख्या करके जो कुछ मुझे समझाया, उसको सुनकर व समझकर मेरे मन में बहुत ही प्रसन्नता बढ़ी। आपकी कृपापूर्वक यह पूर्ण आशा है कि मैं अवश्य ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। कृपा करके मुझे यह और समझा दीजिये कि क्या ब्रह्मचारियों के कोई अन्य भेद भी होते हैं और यदि होते हैं तो उनके नाम क्या-क्या होते हैं? और उन नामों के अनुसार उनके अन्दर किस-किस प्रकार से गुणों का उत्कर्ष हुआ करता है? कृपा करके ये बातें मुझे और समझा दीजिये ताकि मुझे सभी सिद्धान्तों की जानकारी हो जाय और मैं ब्रह्मचर्यव्रत के अलौकिक लाभों की प्राप्त कर सकूँ?

उत्तर : हे पुत्र! ब्रह्मचारी शब्द का अर्थ तो एक ही है और वह– **''ब्रह्मणि चरितो शीलमस्यास्तीति ब्रह्मचारी।''** अर्थात् जिस व्यक्ति की ब्रह्म में विचरने की आदत पड़ गई है वही ब्रह्मचारी कहलाता है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! ब्रह्म में विचरने की आदत तो एक गृहस्थ की भी हो सकती है, फिर क्या वे लोग भी ब्रह्मचारी हैं।

उत्तर : हे पुत्र! अवश्य गृहस्थी भी ब्रह्मचारी हो सकते हैं। इस विषय में मनुजी महाराज अपनी मनुस्मृति में लिखते हैं कि—

ऋतुकालाभिगामिस्यात् स्वदारनिरत: सदा ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्र आश्रमे वसन्।

अर्थात् जो लोग गृहस्थ आश्रम में रहते हुए ऋतुकाल के बाद में ही केवलमात्र सन्तानोत्पत्ति के लिए सहवास करते हैं और केवल मात्र अपनी पत्नी में ही प्रेम करते हैं, वे लोग जिस किसी भी आश्रम रहते हुए ब्रह्मचारी ही हैं। क्योंकि हमारे शास्त्रों में वीर्य को ब्रह्म माना गया है। एक ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य बल के प्रभाव से स्वत: ही ब्रह्मस्थ हो जाता है और सकल शक्तियों का केन्द्र बन जाया करता है। तुमने ब्रह्मचारियों के भेद पूछे हैं कोई खास भेद तो नहीं होते किन्तु नाम मात्र के लिए नैष्ठिक व उपकुर्वाण भेद होते हैं।

प्रश्न : हे गुरुदेव ब्रह्मचारियों के नैष्ठिक व उपकुर्वाण आदि क्या भेद होते हैं। कृपाकर उनका रूपक मुझे समझाइये।

उत्तर : हे पुत्र सुनो! शास्त्र विधि से ब्रह्मचारियों की दो संज्ञायें हैं—
(१) नैष्ठिक (२) उपकुर्वाणि।

(१) नैष्ठिक – नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह कहलाता है जो जीवन पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। उदाहरणार्थ- भीष्म-पितामह, शंकराचार्य, आर्य समाज प्रवर्तक स्वामी दयानन्द हुए हैं।

(२) उपकुर्वाण – उपकुर्वाण ब्रह्मचारी वह कहलाता है जो समय की अवधि तक ब्रह्मचर्य आश्रम का पूर्ण रूप से पालन करके गृहस्थ में प्रवेश कर जाये किन्तु किसी भी संज्ञा का कोई भी ब्रह्मचारी हो, ब्रह्मचर्य अवस्था में मैथुन त्याग परमावश्यक है।

कर्मणा मनसा वाचा, सर्वावस्था सुसर्वदा।
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्य प्रचक्षते।।

जो सब अवस्था में मन वाणी कर्म से सर्वथा मैथुन का त्याग करता है। वही ब्रह्मचारी कहलाने वाला अधिकारी है। मनुस्मृति आदि में ब्रह्मचर्य आश्रम के लिए बहुत बड़े-बड़े नियम लिखे हैं। लेख के बढ़ जाने के भय से इन सबका यहाँ उदाहरण करना आवश्यक नहीं समझता। किन्तु इस विषय में सभी शास्त्रों का एकमत है कि मन से भी ब्रह्मचारी को विषयों का चिन्तन नहीं करना चाहिए। क्योंकि—

ध्यायतो विषयान्पुंस: सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते काम: कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति संमोह: संमोहात्स्मृतिविभ्रम:।
स्मृतिभ्रंशाद बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

— गीता २/६२-६३

अर्थात् विषयों का चिन्तन करने से मनुष्य को संग व संग से काम, काम से क्रोध और क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रंश और स्मृतिभ्रंश से मुद्धि नाश और नाश से सर्वनाश हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार जो मनुष्य चिन्तन मात्र से विषयों का स्मरण नहीं करता वही ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन कर सकता है अन्यथा नहीं। जिसने इस ब्रह्मचर्य रूप महाशक्ति को धारण कर लिया है, उसने संसार को जीत लिया है। ब्रह्मचारी में सिद्धों की तरह शक्तिपात करने की योग्यता आ जाती है। भगवान पतञ्जलिदेव ने ब्रह्मचर्य धारण का फल एक सूत्र में बतलाया है—

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ:।

– योग सूत्र २/३८

ब्रह्मचर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा में पूर्ण सामर्थ्य लाभ होता है। इसी सूत्र का भाष्य करते हुये भगवान व्यासदेव जी कहते हैं—

यस्य लाभाद् प्रतिधानगुणानुत्कर्षो- यति: सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञानमाधातुं समार्थो भवतीति।

अर्थात् इस ब्रह्मचर्य के धारण करने से अनुपम गुण बढ़ते हैं और पूर्ण ब्रह्मचर्य सिद्ध हो जाने पर ब्रह्मचारी अपने शिष्यों में शक्ति संचार करके ज्ञान धारण करा सकता है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! आपने बतलाया कि ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने से ब्रह्मचारी अपने अलौकिक गुणों को अकर्षित कर लेता है और इसके साथ ही **'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ'** कह करके वीर्य लाभ की बात बतलाई। क्या वीर्यलाभ शब्द से शरीर की सप्तम धातु वीर्य ही बढ़ता है या वीर्य लाभ का कोई और अभिप्राय है जिससे शरीर में शक्ति का अतुलित विकास हो?

उत्तर : हे पुत्र सुनो! वीर्य नाम शक्ति का है। ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करने से योगी के शरीर में अतुलित शक्तियों का उदय हो जाया करता है। यदि ब्रह्मचारी थोड़ी सी भी अपनी वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाता है तो वह सकल शक्तियों का अधिष्ठान बनता है। यही कारण है कि भगवान पतञ्जलिदेव महाराज ने **'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ'** कह करके अतुलित शक्ति प्राप्त करने का संकेत दिया है। और साथ ही यह भी कहा है कि—

ब्रह्मचारी विनेयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति।

अर्थात् ब्रह्मचारी अपने अन्दर उत्कृष्ट गुणों को धारण करके अपने विनीत शिष्यों के अन्दर शक्ति का आधान करने की ताकत प्राप्त कर लेता है। शक्ति का आधान वही व्यक्ति कर सकता है जिसके अन्दर शक्ति हो। यदि किसी के अन्दर शक्ति है ही नहीं तो वह शक्ति का आधान करेगा ही क्या! शक्ति वाला व्यक्ति ही शक्ति का आधान कर सकता है और इस पर भी यदि मनुष्य उर्ध्वरेतस ब्रह्मचारी हो जाये तब तो उसकी शक्ति का कहना ही क्या है। उसका मस्तिष्क शक्तियों का केन्द्र बन जाया करता है और उर्ध्वरतस ब्रह्मचारी के मन में किसी प्रकार की कामवासनाओं की जाग्रति ही नहीं होती। उसका मन तो प्रतिक्षण समाधी की ओर ही भागता रहता है।

प्रश्न : हे गुरुदेव ऊर्ध्वरेतसता का क्या अर्थ है और ऊर्ध्वरेतसता किस प्रकार से प्राप्त हो सकती है। कृपा करके बतला दीजिए?

उत्तर : हे पुत्र सुनो! ऊर्ध्वरेतसता का यह अर्थ है वीर्य की उर्ध्वगति! हर मनुष्य के नाभि मण्डल में वीर्य की स्थिति रहती है। यदि मनुष्य का मन वासनाओं में घूमता रहता है तो येन केन प्रकारेण उसके वीर्य की अधोगति अर्थात् स्खलन हो ही जाया करता है। किन्तु यदि ब्रह्मचारी किसी प्रकार की साधना से उर्ध्वरेतसता प्राप्त कर लेता है, तो वह स्खलन से रहित हो जाया करता है एवं अनुतिल शक्ति को प्राप्त कर लिया करता है। उर्ध्वरेतसता प्राप्त करने के लिये प्राणायाम की दो विधियों का तुम्हारे सामने वर्णन करते हैं। उनको तुम पढ़ लो। इनको पढ़कर यदि तुम इस साधना को बढ़ाना चाहोगे तो अवश्य उर्ध्वरेतस हो जाओगे एवं इस विधि से प्राणायाम करने पर अतुलित शक्ति को प्राप्त कर सकोगे।

उर्ध्वरेतस प्राणायाम की प्रथम विधि—

योगासन करने वाले साधक त्रिकोण आसन को भली प्रकार जानते हैं। पहले साधारण रूप से सीधे खड़े हो जायें फिर सहसा अपने प्राणों को नासिका रन्ध्रों से एकदम बाहर निकाल दें और निकाल देने पर नाभि के नीचे के भाग को जहाँ पर मलमूत्र विसर्जनी नाड़ियां रहतीं हैं उस भाग को अपने दाहिने हाथ से बायीं ओर से दाहिनी ओर मल करके प्राण को बाहर रोके हुए ही बायीं ओर को घुटना झुकाकर त्रिकोण आसन कर लें और उसके बाद में धीरे-धीरे प्राण को भीतर ले आयें किन्तु भीतर रोकने की आवश्यकता नहीं है, फिर प्राणों को समान गति से चलने दें, इसी प्रकार से फिर दूसरी बार पूरे प्राण कोष को बाहर निकाल कर नाभि के नीचे के भाग फिर दाहिने हाथ से ऊपर की ओर मलकर प्राण को बाहर रोके हुए दाहिनी ओर का घुटना झुका करके त्रिकोण आसन की विधि से आसन करें। जब तक प्राण बाहर रहे तब तक उस आसन को कायम रखें और ज्यों ही घबड़ाहट शुरू हो और प्राण भीतर जाने लगे तो आसन भी छोड़ दें, साथ-साथ यह धारणा करते रहें कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ। ऐसा करने से मूत्राशय और मलाशय के ऊपर की ओर आकर्षित हो जायेगा। और इस क्रिया को करने वाला व्यक्ति उर्ध्वरेतस हो जायेगा।

ऊर्ध्वरेतस प्राणायाम की द्वितीय विधि—

सिद्धासन में बैठ जाइये! साधारण रूप से अपने बायें पैर की एड़ी को गुदा द्वार के आगे लिंग नाल के नीचे दृढ़ता से जमा कर रखें और दूसरे पैर की एड़ी को लिंग नाल के ऊपर रखें, वह एड़ियां इस प्रकार रखी हों जिनकी ग्रन्थि भाग (टाकनी) बिल्कुल समसूत्र रूप से मिले हुए हों, इस प्रकार जमायें। नीचे की एड़ी को थोड़ा दृढ़ रखें जहाँ यह एड़ी रखी जाती है वहीं से वीर्य वाहिनी नाड़ी जाती है इसके दबासव से वह नाड़ी दब जाती है और इस नाड़ी के दब जाने से मन के वासनिक आकर्षण कम हो जाते हैं इस प्रकार अपने पैरों को जमाकर और दोनों हाथों को घुटनों पर जमाकर समकाय शिरोग्रीव की विधि के अनुसार शरीर को सम सूत्रता में रखकर सीधा बैठ जाये। ठोड़ी को थोड़ा झुकाकर छाती में लगाये, पेट भीतर की ओर खिंचा हुआ हो इसको सिंहासन कहा है। इस आसन से बैठकर ऊपर बतलाई विधि के अनुसार अपने सारे शरीर के प्राण को एकदम बाहर निकाल दे, और उड्डयान बन्ध लगा ले। उड्डयान बन्ध के साथ-साथ मूलद्वार का आकर्षण भी ऊपर की ओर स्वाभाविक हो जायेगा। प्राणों को बाहर की ओर रोके रखें। जिस समय प्राण बाहर रुका हुआ हो और उड्डयान बन्ध लगाकर मूलद्वार का ऊर्ध्वाकर्षण किया हुआ हो उस समय अपने मन में धारणा करे कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षण कर रहा हूँ, फिर उसके बाद जब घबराहट हो तो प्राण को अन्दर ले आयें किन्तु अन्दर रोकें नहीं। इस प्रकार के तीन प्राणीयाम रोज करने से वीर्य विकारों में बड़ा अनुपम लाभ होता है। और इसके साथ-साथ उपयुक्त खानपान मिलता हो तो इन्हीं प्राणायामों को २०-२१ तक भी बढ़ाया जा सकता है किन्तु हर साधक को अधिक मात्रा में प्राणायाम नहीं करना चाहिये केवल मात्र वीर्य विकार वाले रोगियों को रोग निवृत्ति के लिये दो या तीन प्राणायाम कर लेना चाहिये, ऐसा करने से उनको अवश्य अनुपम लाभ होगा।

शिष्य— हे गुरुदेव! आपकी कृपापूर्वक प्राणायाम की ऊर्ध्वरेतस विधियों को भली प्रकार समझ लिया है एवं

ब्रह्मचर्य पालन के नियमों को भी भली प्रकार से जान लिया है और यह भी मैं भली प्रकार से जान लिया है और यह भी मैं भली प्रकार से समझ गया हूँ कि ब्रह्मचारी के अन्दर अनोखे गुण व शक्तियों का समावेश हो जाया करता है। मैं अब आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर अपने ब्रह्मचर्यव्रत का पूरी तरह से पालन करने का प्रयत्न तो करूँगा किन्तु मेरे मन में एक बड़ी भारी शंका पैदा होती है और वह यह है कि आजकल युग प्रवाह तो बहुत ही गलत चल रहा है। आजकल के समय में बचपन में ही वासनाओं के दृश्य दिखला दिये जाते हैं जिसके फलस्वरूप मन अत्यन्त ही चश्चल बन जाता है। ऐसी स्थिति में मन का सँभालना बहुत ही कठिन मालूम पड़ता है क्योंकि वासनिक दृश्यों को देखकर मन तो बिल्कुल वासना-भोगी बन ही जाता है। ऐसी स्थिति में ऐसे भ्रष्ट मन की सँभाल कैसे हो पायेगी। जबकि भगवान श्रीकृष्ण अपनी श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में इस बात को स्वयं स्वीकार कर रहे हैं—

यततो ह्यापि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।

अर्थात् बड़े ही बुद्धिमान विपश्चित व्यक्ति इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न करते हैं किन्तु प्रयत्न करने पर भी वे अपने आपको सँभाल नहीं पाते। इन्द्रियों का वेग इतनी प्रबलता से मसल डालने वाला है कि वे इन्द्रियां पुरुष के मन को जबरदस्ती वेग के साथ खींचकर के वासना के आकर्षक स्वरूप में लगा ही देती हैं। ऐसी स्थिति में क्या किया जाये? इसका उपदेश और कृपा करके आप मुझे दीजिये ताकि मैं अपने आपको संभाल सकूँ एवं पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर सकूँ?

उत्तर : हे पुत्र! प्रश्न तो तुम्हारा बिल्कुल ठीक है, उसमें पहली बात तो यह है— ऐसे व्यक्तियों को जो कि वासनिक प्रवाह में प्रवाहित हो चुके हैं उनका मन पर साधारणतया नियन्त्रण कर लेना बहुत ही कठिन हो जाया करता है। किन्तु जो लोग प्रगाढ़ मन से प्रयत्नशील रहते हैं उनको सफलता मिल भी जाया करती है। ऐसे व्यक्तियों को चाहिये कि वह नित्य नियम से अपने शारीरिक व्यायाम को किया करें। व्यायाम करने वाले साधकों का वीर्य शरीर में व्यापक हो जाया करता है ओर वह फिर लोलुपता को नहीं बढ़ाता, किंतु इसके बाद में भी उन लोगों को अपनी नियमावली कुछ ऐसी बनानी चाहिए कि वे अपने मन को खाली न रहने दें। अपने को दैनिक कार्यक्रमों में व्यस्त रखें। तुमने यह लोकोक्ति सुनी ही होगी कि ''खाली मन शैतान का वास।'' जो व्यक्ति कुछ भी काम नहीं करते और अपने शरीर को बहुत ही आराम परस्त बना देते हैं और अपने जीवन का लक्ष्य, केवल मात्र खाना पीना और शय्याओं में पड़े रहकर के सब दिन सोते रहना, ऐसे व्यक्ति कभी भी दुर्व्यसनों से खाली नहीं रह सकते। ना ही वे लोग ऊर्ध्ववरेतस बन सकते हैं। ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी तो वही बन सकता है जो अपना नैत्यिक व्यायाम योगासन आदि नित्य नियम से करता है, उनका वीर्य शरीर में व्यापक हो जाता है और इसके साथ-साथ जो लोग अपनी दिनचर्या को बनाये रखते हैं। सब दिन किसी भी समय मन को खाली नहीं रहने देते। जो लोग बिजनैस, व्यापार वाले हैं वे लोग दुकानों पर जाकर व्यस्त हो जाया करते हैं और सब दिन अपना बिक्री का कार्य करते रहते हैं उनका मन खाली नहीं हो पाता, व्यस्तता इतनी अधिक रहती है कि मन को वासनिक चिन्तन का समय ही नहीं मिल पाता। और इस ही प्रकार जो लोग दफ्तरों में जाकर सरकारी कार्य करते हैं वे उन कार्यों में अपने आपको व्यस्त बनाये रखते हैं। इसी प्रकार पठन-पाठन में लगे रहने वाले व्यक्ति सब दिन अपने अध्ययन कार्य को करते रहते हैं, एवं नियमावली बनाकर रखते हैं उनका भी मन खाली नहीं हो पाता। इससे जीवन व्यस्ततापूर्ण रहने पर मन को इतर सोचने का समय मिलता ही नहीं। इसलिए नैत्यिक व्यायाम करना, ऊर्ध्वरेतस प्राणायाम करना और जीवन को व्यस्त रखना, मन को खाली न रहने देना, ये सब बातें मन को संयमित रखने की सीढ़ियां हैं। इस ही साधना स्तम्भ का सहारा लेकर जो व्यक्ति उठा चाहेगा वह अवश्य उठ ही जायेगा। और जो व्यक्ति इस नियमानुवर्तिता की उपेक्षा करेगा उसका उत्थान बहुत ही कठिन हो जायेगा। इसलिये तुम उपरोक्त नियमों का पालन करो और अपने कार्यक्रमों को व्यस्ततापूर्ण बनाकर रखो ऐसा करने से सफलता को अवश्य ही पा सकोगे।

प्रश्न : हे गुरुदेव मैंने ब्रह्मचर्य सहित चार यम नियमों को तो भली प्रकार समझ लिया अब कृपा करके पांचवे यम अपरिग्रह के विषय में और थोड़ा सा समझा दीजिये ताकि यमों के पालन में तत्परता के साथ लग सकूँ एवं सफलता प्राप्त कर सकूँ।

उत्तर : हे पुत्र! परिग्रह का न होना अपरिग्रह कहलाता है। संसार के सब विषयों में और अपने शरीर में स्वत्व बुद्धि का नाश हो जाने पर प्राणी शरीर धर्मों से अपने आपको अलहदा देखता है और उसको अपने पूर्व संस्कार स्मरण होने लगते हैं। मैं कौन था? क्या था? कैसा था? क्यों था? आगे क्या होऊँगा? इस प्रकार की प्रवृत्तियां मन में घूमने लगती हैं। ऐसी भावना से शरीर धर्म में भी उपरति हो जाने के बाद उसको जन्म-जन्मान्तर की कथाओं का स्मरण होने लगता है। भगवान् पतञ्जलि जी लिखते हैं—

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथान्तासंबोध:।

— योग सूत्र २/३९

अर्थात् पूर्णत: अपरिग्रह की स्थिरता हो जाने के बाद जन्म-जन्मान्तरों की कथाओं का प्रबोध होता है। यह सब यमों की सिद्धियाँ हैं।

यमों का पालन करता हुआ योगी जब अपने मन में यह विचार करता है कि मैं कौन था? कैसे था? कहां था? जब उसके मन में इस प्रकार के प्रश्न उठते हैं और वह परिग्रह से आगे उठ जाता है तो यौगिक संयम के आधार पर उस साधक को जन्म-जन्मान्तर की जीवन कथायें याद आने लगती है। समाधि की एक भूमिका होती है उस भूमिका में मन पहुँच जाने पर योगी जो भी सोचता उसके मानस प्रश्नों का उत्तर उस व्यापक सत्ता से परम गुरु की कृपापूर्वक स्वत: ही होने लगता है। यही उसके जन्म-जन्मान्तरों की कथाओं के सम्बन्ध का एक कारण बनता है।

शिष्य :— हे गुरुदेव आपके यमों की साधना पर होने वाले इस पवित्र व्याख्यान को सुनकर मेरा मन सावधान हो गया है। मैं रह-रह करके अपनी साधनाओं पर बार-बार विचार करता हूँ और उनको अपने जीवन में घटित करने के प्रयास में लगा रहता हूँ। मेरे मन में यह विश्वास पूर्ण हो चुका है कि आपकी कृपापूर्वक मैं इनमें सफलता को पा जाऊँगा। जैसा कि आपने मुझे पहले उपदेशों में समझा दिया है वैसे ही मैं अपने अध्ययन काल में भी अपनी कार्य प्रणाली को व्यस्ततापूर्ण बनाने के प्रयत्न में लगा रहता हूँ। अहिंसा के धर्मों को मैंने भली प्रकार समझ लिया है कि 'मनसा वाचा कर्मणा' किसी को दु:ख न देने का रूपक ही अहिंसा है। इस ही प्रकार 'सत्य अस्तेय एवं ब्रह्मचर्य' के नियमों को भी भली प्रकार से समझ गया हूँ। अपरिग्रह के विषय में आपने मुझे भली प्रकार से समझा ही दिया है कि मन में यदि अपरिग्रह की स्थिरता हो जायेगी तो जन्म-जन्मान्तर के कथाओं का ज्ञान हो जाना स्वत: ही आरम्भ हो जायेगा। आपकी इस अवरणनीय अनुपम कृपा को पाकर मुझे पूरी-पूरी आशा हो गई है कि मैं अपनी योग साधना के उच्चतम लक्ष्य को आपके आशीर्वाद पूर्वक अब मैं अवश्य ही प्राप्त कर सकूँगा। आपने मुझ पर अपार अनुग्रह किया है अत: हे देवाधिदेव! मैं आपके चरणारविन्द में बार-बार प्रणाम करता हूँ।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

पवित्र वनखण्ड में मकर-वाहिनी भगवती गंगा के पवित्र तट पर एक बहुत ही सुन्दर आश्रम दिखलाई दे रहा है। प्रात:काल की पवित्र बेला है। ऊषा काल शनै:-शनै: निकट आता जा रहा है। आश्रम निवासी तपस्वी ब्रह्मचारीगण अपने नैत्यिक कर्म शौच-स्नान आदि से निवृत्त हो चुके हैं। वेद-पाठ की पवित्र ध्वनि आ रही है। प्रात:कालीन वेद-पाठ के बाद आश्रम में ब्रह्मयज्ञ करने वाले, ब्रह्मयज्ञ के बाद देवयज्ञ की तैयारी में हैं। शनै:-शनै: स्तत: चारों ओर के आश्रम से ब्रह्मचारीगण वहां इकट्ठे हो चुके हैं। प्रात:कालीन मङ्गल गीत पवित्र सामवेद की विधि से गायन किये जा रहे हैं। ओह! कितना सुहावना दृश्य है? वेद-ध्वनि कितनी मनोहर है। मालूम पड़ता है कि इस आश्रम में स्वत: ही नाद-ब्रह्म का प्रकाश हो रहा है। एक ओर पवित्र सामवेद का गायन मनोहारी ध्वनियां, उधर देवयज्ञ करने वाले ब्रह्मचारियों की वेद-ध्वनि आश्रम में यज्ञ की पवित्र धूम, आश्रम के वातावरण को कितना शुद्ध बना रहा है। मालूम पड़ता है कि इस आश्रम में पूर्णरूपेण दैवी सम्पत्ति का उदय हो चुका है। धीरे-धीरे सभी वेद-पाठी लोग और स्तत: आश्रम से आने वाले ब्रह्मचारीगण ध्यानावस्थित हो गये हैं। ध्यानमग्न ये सभी सन्त आश्रम के दृश्य को कितना मनोहारी बना रहे हैं, वर्णनातीत है। ओह! यह देखो, इधर आश्रम की गौशाला है, मालूम पड़ता है कि यहां के ब्रह्मचारीगण सभी गौ-दूध का ही पान करते हैं। गौशाला के अन्दर सेवक लोग गौ-सेवा में रत हैं। गौओं का प्रात:कालीन शुद्ध-शुद्ध हरी-हरी घास का आहार गौओं को दिया जा रहा है। उनके रहने के स्थान को घास-फूस आदि हटाकर गौमल को एक तरफ फेंक करके सूर्योदय से पहले ही गौशाला को परम शुद्ध बना दिया गया है। गौशाला की सेवा से निवृत्त होकर आश्रम की अन्य सेवाओं में सभी लग चुके हैं, शनै:-शनै: भगवान भास्कर अपने आगमन की सूचना दे रहे हैं। उषाकालीन आकाश उजला हो चुका है। आश्रम में आस-पास के आश्रमों से सन्त-मण्डलियाँ एवं गृहस्थियों के समूह भी जिज्ञासु भाव से आश्रम में आकर इकट्ठा होता जा रहा है। योगाचार्य भगवान तपोनिधि जी अभी तक समाधिस्थ हैं। भगवान् भास्कर का उदय हो चुका है, किन्तु योग भास्कर योगाचार्य श्री तपोनिधि जी अपनी पवित्र पर्णकुटीर से अभी बाहर नहीं आये हैं। पर्णकुटीर के झरोखों से जिज्ञासु वर्ग झुक-झुककर देख रहे हैं कि योग-मार्तण्ड कब समाधि से उठकर जिज्ञासु-समुदाय को अपने दिव्यदर्शन देकर कृतार्थ करेंगे। यह देखो श्री योगाचार्य जी के शरीर में कुछ-कुछ कंपन शुरू हो गया है। मालूम पड़ता है कि उनका प्राण-कोष अब ब्रह्माण्ड से अण्ड में उतरने वाला है। बड़ी मनोहरिणी प्रणवध्वनि कानों में पड़ी आचार्य के कण्ठ से निकली हुई यह ध्वनि साधकों के मन में एकाग्रता प्रदान कर रही है। सभी जिज्ञासु-समुदाय ने आचार्य को उठा हुआ देख करके गाना आरम्भ कर दिया ''हम कब से आये हैं योगेश्वर तेरे द्वारे'' जिज्ञासुओं की प्रेम-ध्वनि सुन करके योगाचार्य मुस्कराते हुए बाहर आये। साधकों के मन हर्षोल्लास से भर गये। उन्होंने योगाचार्य जी की जय-ध्वनियों से आकाश को निनादित कर दिया। कुटिया के सामने उपस्थित हुए जिज्ञासु लोगों की जय-ध्वनियों को सुनकर आपस-पास के रहने वाले सन्त समुदाय के भी हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। सभी के मन एक अनुपम से आनन्द से भर गये। यह लोग हर्ष मग्न होकर कह रहे थे। भाई चलो, श्रीगुरुदेव समाधि से उठ गये हैं, उनके सामने चल करके हम लोग अपने आपको कृतार्थ करें। शनै:-शनै: तपो-मण्डली से आश्रम भर गया। श्री योगाचार्य तपोनिधि जी एक ऊँचे तखत पर बिछाये गये पवित्र मृगचर्म पर आसनासीन हो गये। साधक-समुदाय के सामने बैठ जाने पर भी आचार्य का मुखमण्डल बहुत ही शान्त दिखलाई दे रहा है। उनकी अब भी दृष्टि ऊर्ध्व दृष्टि दिखलाई दे रही है। आंखों की पुतलियां शनै:-शनै: नीचे आती हैं, किन्तु क्षण भर सभी लोगों की ओर देखते हुए भी भूमध्यवलोकन करने लगते हैं। शनै:-शनै: योगाचार्य ने आंखें खोलीं एवं साधक-समुदाय को देखकर उनको कृतार्थ किया। योगाचार्य जी ने अपना भाषण आरम्भ किया। उन्होंने कहा बेटा-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, नमेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः, तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्।।

अर्थात् यह आत्मा मनुष्य के अपनी बुद्धिमानी से, शास्त्रों के श्रवण से या बहुत प्रश्नोत्तरी करने से प्राप्त नहीं होता, किन्तु जिस पवित्र आत्मा को यह स्वयं स्वीकार करता है, उसी को प्राप्त होता है एवं उसके शरीर को अपना मन्दिर बना लेता है और वह सर्व शक्तिमान् जिसका वरण करते हैं, उसको अपने अन्दर विलीन कर लेते हैं अर्थात् वह उन्हीं का स्वरूप बन जाता है। आचार्य के भाषण को सुन करके एक जिज्ञासु साधक उठा और उसने हाथ जोड़ करके कहा कि— हे गुरुदेव! क्या इसी का नाम शक्तिपात है? जंगलों में रहने वाले ऋषि, मुनि, तपस्वी तथा अपनी शिष्य मण्डली को इसी शक्तिपात के द्वारा योग-दीक्षाएँ दिया करते हैं?

उत्तर : हां बेटा! यही सिद्धयोग है, इसी का नाम स्वयंवरण है और इसी का नाम शक्तिपात है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! क्या यह शक्तिपात सभी शिष्य मण्डली पर सामान्य रूप से बराबर होता है? और वह शक्ति सभी के अन्दर पूर्णरूप से जागृति हो जाती है।

उत्तर : हाँ बेटा! शक्तिपात तो सामान्य रूप से सभी के लिए बराबर ही होता है?

प्रश्न : हे गुरुदेव! यदि शक्तिपात सभी पर सामान्य रूप से बराबर होता है तो यह क्या कारण है? मैं तो यह देखता हूँ कि हमारे गुरु-भाइयों की ध्यान-समाधि की स्थिति तो सभी की बराबर नहीं होती। एक-एक गुरु-भाई तो इस प्रकार के हैं कि वह कई-कई घण्टे समाधिस्थ रहते हैं और कोई-कोई गुरु-भाई इस प्रकार हैं जिनका ध्यान सामान्य रूप से चलता है और उनमें भी कई एक ऐसे भी हैं कि जिन पर बार-बार शक्तिपात करने पर भी स्थिति बन ही नहीं पाती। इसका क्या कारण है?

उत्तर : बेटा! तुम्हारा प्रश्न ठीक है? यह तारतम्य रहता है और उसका कारण केवलमात्र एक ही है और वह यह कि साधक जितना-जितना अधिकारी होता है, उतना-उतना शक्ति को पा लेता है। सूर्य का प्रकाश सभी पर बराबर पड़ता है, किन्तु आतिशी शीशे के अन्दर पड़ा सूर्य का प्रकाश जहाँ पड़ता है, उस वस्त्र को जला देता है, आग लगा देता है और वही प्रकाश यदि पानी से भीगे हुए और गेंद के समान पिण्डाकार बने हुए एक वस्त्र पर पड़ता है, उसको वह सुखा भी नहीं पाता। इसलिए शक्तिपात को प्राप्त करने वाले साधक का हृदय कितना अधिकारी है, यह विचारने की आवश्यकता रहती है। यदि उत्तमाधिकारी है तो वह शक्ति को तत्काल ग्रहण कर लेता है और उसके अन्दर शक्ति का विकास भी उत्तमोतम हो जाता है। उसकी वृत्ति एकदम ऊँची उठने लगती है और यदि कोई साधक अधिकारी नहीं है, उसके अन्दर शक्ति का उत्थान नहीं हो पाता है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! जिन साधकों पर शक्तिपात नहीं होता, उनको क्या करना चाहिए? किस उपाय से वे शक्तिपात के अधिकारी बन सकेंगे। क्या वे लोग आपकी इस पवित्र कृपा को कभी पा ही नहीं सकेंगे?

उत्तर : नहीं बेटा! ऐसी बात नहीं है, शक्ति तो वे लोग पा सकेंगे, किन्तु उनको अपने आपको अधिकारी बनाना चाहिए। देखो योग-दर्शन में भगवान् पतञ्जलिदेव जी बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि—

तीव्र संवेगानामासन्नः।

व्यास भाष्य—

समाधि लाभः समाधि फलं च भवतीति।

अर्थात् जिनकी लगन तीव्र है और उपाय भी तीव्र है और उसका प्रयत्न भी तीव्र है, तो ऐसे व्यक्ति को जल्दी से जल्दी समाधि की प्राप्ति हो जाया करती है और इसके अतिरिक्त जो लोग निम्नाधिकारी हैं, वे भी शनैः-शनैः बढ़ तो जाते हैं, किन्तु अन्तर इतना ही रहता है कि जिस प्रकार पिण्डाकार बने हुए गीले वस्त्र को सूर्य की किरणें सुखा तो देती हैं, किन्तु वह शनैः-शनैः उस वस्त्र को सुखा पाती हैं। यदि उसी वस्त्र को पानी से निकाल कर निचोड़कर वायु वाले स्थान में उसको सुखा दिया जाय, तो भगवान भास्कर की तीव्रतम रश्मियां बहुत ही जल्दी उसको सुखा डालेंगी। देखो भगवान पतञ्जलिदेव ने अपने शब्दों के अन्दर अपने योग-दर्शन में इस विषय को बहुत ही स्पष्टीकरण के साथ समझा करके लिख दिया है। पढ़ो समाधि-पाद में २२ वां योग-सूत्र—

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः।

व्यास-भाष्य—

मृदुतीव्रो मध्यतीव्रोऽधिमात्रतीव्र इति। ततोऽपि विशेषः। तद्विशेषादपि मृदुतीव्रसंवेगस्याऽऽसन्नः, ततो मध्यतीव्रसंवेगस्याऽऽसन्नतरः, तस्मादधिमात्रतीव्र-संवेगस्याधिमात्रोपायस्याप्या सन्नतमः समाधिलाभः समाधिफलं चेति।।

अर्थात् अधिकारों के भेद निम्न प्रकार के हैं। तीन प्रकार के अधिकारी होते हैं— मृदुपाय, मध्यपाय एवं अधिमात्रोपाय। इसी प्रकार से तीव्र संवेग, मध्य संवेग, अधिमात्र संवेग। यदि कोई अधिकारी बहुत गाढ़ी लगन का है और संयोगवश उसको कोई शिक्षक भी उत्तम मिल गये हैं और रास्ता भी ऊँचा मिल गया है तो वह बहुत जल्दी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा और यदि कोई निम्नाधिकारी है और उसका

प्रयत्न भी हल्का है और उसको शिक्षक भी साधारण मिल गये हैं तो वह उसको कह दें कि—

राम नाम रटते रहो, जब लगि घट में प्राण।
कबहूँ तो दीनदयाल के, भनक पड़ेगी कान।।

अर्थात् वह बेचारा राम-नाम ही रटता रहेगा। जब कभी दीनदयाल के कान में भनक पड़ ही जायेगी, तो उसकी सुनाई हो जायेगी, नहीं तो यूँ ही रटते रहो।

प्रश्न : हे गुरुदेव! क्या राम-नाम रटना अच्छी बात नहीं?

उत्तर : नहीं बेटा! अच्छी बात तो है, किन्तु रामनाम का रटना भी मन की एकाग्रता के बिना विशेष काम नहीं करता। मुख्य बात मन की एकाग्रता की है। मन में एकाग्रता हुई, तो राम-नाम का उच्चारण एक बार में ही सब काम कर देगा, और यदि मन के अन्दर एकाग्रता नहीं है, तो र, म, च, ट, त, ये सभी अक्षर हैं और सभी में आवाज है। शब्द आकाश का गुण है। आकाश में ही उसका विलय हो जाता है। इसलिए ध्वनि के साथ यदि मन में एकाग्रता है, तो वह फलदायी चीज है। देखो! तुम इस बात को इस प्रकार से समझो। किसी टेप रिकार्डर ने राम-नाम की ध्वनि को टेप कर लिया और मौका पा करके वह उस ध्वनि को बजाने लग गया। उस ध्वनि में से आवाज तो यही निकलेगी—

हरे राम हरे राम, राम नाम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

इस ध्वनि को सुन करके कोई दूसरा व्यक्ति आकर कहता है कि— ओह! कितनी मनोरम ध्वनि निकल रही है? टेप किये इस रिकार्ड की अवश्य मुक्ति हो जायेगी, तो दूसरा व्यक्ति बुद्धिमान तत्काल उसका उत्तर दे देगा, कि अरे भाई! यह तो मशीन है, इसकी क्या मुक्ति हो जायेगी? यह तो स्वयं जड़ है। जड़ पदार्थ की क्या मुक्ति? यदि यह चेतन होता एवं मन की एकाग्रता के साथ इस ध्वनि को उच्चारण करता और साथ ही 'श्रीराम' का ध्यान भी करता, तो उसकी मुक्ति हो जाती। जड़ पदार्थ की मुक्ति थोड़े ही होती है। इसी प्रकार से यदि कोई भी व्यक्ति जिसकी मस्तिष्क शक्ति केन्द्रित नहीं है, अर्थात् जो पागल हो गया है, वह अपनी पागलपन की धुन में सड़कों पर धूमता हुआ राम नाम का उच्चारण करता है। यह तो केवलमात्र उसकी सनक है। उसके मन में किसी प्रकार की एकाग्रता तो है ही नहीं, इसलिए उसका राम-नाम की ध्वनि का उच्चारण करना उसकी मुक्ति का साधन नहीं।

प्रश्न : तो हे गुरुदेव! इसका अर्थ तो यह हुआ कि राम-नाम के उच्चारण में भी अधिकारी भेद की आवश्यकता है? इस बात की आप कृपा करके उदाहरण के साथ मुझे स्पष्ट करके समझाइये, ताकि मैं विषय को समझ सकूँ एवं उन्नति की ओर प्रगति कर सकूँ।

उत्तर : हाँ बेटा! तुम इस बात को इस प्रकार से समझो। गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी में एक कथा आती है, वह इस प्रकार है। गोस्वामी तुलसीदास जी के सामने काफी सन्त समूह इकट्ठा हुआ और उन सब सन्तों के बीच में एक प्रश्न पैदा हुआ कि राम-नाम की शक्ति से कितने कोढ़ी ठीक हो सकते हैं। उस समाज में आये हुए सभी सन्तों में से किसी ने कहा— मैं दस लाख राम-नाम का जप करके एक कोढ़ी को ठीक कर सकता हूँ। उसके बाद दूसरे ने कहा कि मैं पांच लाख से एक कोढ़ी को ठीक करूँगा। इस प्रकार से विभिन्न प्रकार के वाद-विवाद चलते रहे। यही समस्या गोस्वामी तुलसीदास के समझ रखी गई उन्होंने हँसते हुए कहा कि अरे भाई राम-नाम की शक्ति में पांच लाख और दस लाख का प्रयोजन ही क्या है। यदि एक बार राम-नाम का उच्चारण किया जाये तो जहां तक उस राम नाम की आवाज जायेगी और जितने कोढ़ी उस आवाज को सुन लेंगे वे सभी हजारों की संख्या में एक साथ ही ठीक हो जावेंगे।

प्रश्न : हे गुरुदेव! इतना अन्तर क्यों, राम नाम तो एक ही है। एक सन्त दस लाख राम नाप जप कर एक कोढ़ी को ठीक करता है और गोस्वामी तुलसीदास एक ही बार राम नाम उच्चारण करने पर हजारों कोढ़ियों को ठीक करते हैं। इतना बढ़ा अन्तर क्यों हुआ?

उत्तर : हे पुत्र! र, म, च, ट, त यह सभी वर्णाक्षरी के वर्ण हैं और शब्द आकाश का गुण है आकाश में से शब्द पैदा हुआ करता है और आकाश में ही उसका विलय होता है। राम नाम भी एक शब्द है उसकी उत्पत्ति भी आकाश में ही हो जाता है। इसलिये इसकी सार्थकता मन की एकाग्रता के साथ है। राम नाम के उच्चारण करने वाले के मन में जितनी एकाग्रता होगी उतनी ही शक्ति उसके उच्चारण में होगी। इसलिये अन्तर्जगत में प्रविष्ट व्यक्ति अपनी मानस एकाग्रता के साथ राम नाम का प्रयोग करेगा उतनी ही शक्ति के साथ यह दूसरों के भले का कारण बनेगा। गोस्वामी तुलसीदास का मन एकाग्र था इसलिये उनके मुख से निकला राम-नाम हजारों के भले का कारण हो सकता था।

प्रश्न : हे गुरुदेव! तुलसीदास का ही मन एकाग्र क्यों था और सब सन्त भी तो राम नाम का जप करते ही थे, उन सब के मन में एकाग्रता क्यों नहीं आयी, ओर तुलसीदास के ही मन में क्यों एकाग्रता आयी। मन की एकाग्रता तो योग का विषय है। क्या श्री तुलसीदास जी योगी थे? और थे तो कैसे? कैसे और कब-कब उन्होंने योगाभ्यास किया?

उत्तर : हाँ, प्यारे बच्चे! तुम्हारी बुद्धि बहुत अच्छी है। तुम बहुत गहराई के प्रश्न करते हो, हाँ तुलसीदास योगी ही थे। देखो! योग-मार्ग दो प्रकार से चलता है— एक तो मनुष्य साधना करते-करते अपने तीव्रतम् अभ्यास से योग को प्राप्त हो जाय और दूसरा वह व्यक्ति है, जो जप, तप, संयम के आधार पर अपने पुण्यों के खजाने को बढ़ा लेता है, वह सिद्धानुकम्पा से सिद्धयोग का विद्यार्थी बन जाया करता है। गोस्वामी तुलसीदास को भी सिद्धानुग्रह प्राप्त हुआ था।

प्रश्न : हे गुरुदेव! गोस्वामी तुलसीदास तो राम-भक्त थे? उनका सिद्धों और योगियों से क्या सम्पर्क?

उत्तर : हे पुत्र! यह बात तो ठीक है कि गोस्वामी तुलसीदास अवश्य राम-भक्त थे, किन्तु इसके साथ-साथ स्वाध्यायशील भी तो थे। तुम यह जानते हो कि हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है कि — **''स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोग:''** अर्थात् स्वाध्यायशील होने से साधक को अपने इष्टदेव की कृपा-लाभ होती है और ऋषि, मुनि एवं देवतागण स्वाध्यायशील व्यक्ति को दर्शन दे करके उसकी मनोकामना को पूर्ण किया करते हैं।

प्रश्न : हे गुरुदेव! स्वाध्याय किसको कहते हैं?

उत्तर : हे पुत्र! स्वाध्याय के दो अर्थ होते हैं- एक तो प्रणवादि का जप करना। दूसरा वेद शास्त्रों का अध्ययन करना। सो गुसांई तुलसीदास निरन्तर राम-नाम का जप तो करते ही थे और बारह साल तक भगवान् शिव की आराधना भी करते रहे। इसके फलस्वरूप भगवान शंकर तुलसीदास पर प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रकट होकर तुलसीदास से कहा कि तुम वर माँगों। इसके फलस्वरूप तुलसीदास ने श्रीराम को प्राप्त करने का वर मांगा। यह वरदान देकर भगवान् राम ने सिद्धयोग के विद्यार्थी तुलसीदास को बना दिया। उसी दिन से तुलसीदास को भगवान् श्रीराम का साक्षात्कार बना रहने लगा। भगवान शंकर की कृपा प्राप्त करने के बाद तुलसीदास को भगवान् राम के दर्शन अन्दर और बाहर हर समय होने लगे। इसी का नाम सम्प्रज्ञात योग है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! सम्प्रज्ञात योग किसको कहते हैं? मैं सम्प्रज्ञात योग को नहीं समझता? इसलिये हे गुरुदेव! इसके विषय में भी मुझे समझाइये।

उत्तर : हे पुत्र! समाधि के दो रूप माने हैं— सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधि वह समाधि कहलाती है, जिसमें अपवर्ग दाता, दृश्य बराबर दृष्टिगोचर होता रहे, इसी रहस्य का संकेत करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी श्रीमद्भगद्गीता में स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि—

या निशा सर्व भूतानां, तस्यां जागर्तिं संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुने:।।

अर्थात् जिस अध्यात्म रूप दिन में संसार वाले सोते रहते हैं, मुनि लोग उसमें जगते रहते हैं एवं संसार के इन झमेलों में बिजनेस आदि के सांसारिक लोग जब जगते रहते हैं तब मुनि लोग सोया करते हैं। इसलिये जिस आध्यात्मिक जगत में मुनि लोग जागते रहते हैं और भीतरी दृश्य को देखते रहते हैं, उसी का नाम सम्प्रज्ञात समाधि है। यह समाधि साधक को शुद्ध सत्वोदय हो जाने के बाद ही प्राप्त हुआ करती है और इस समाधि के द्वारा अन्तर्दृष्टि को प्राप्त किया हुआ साधक अपने आपको शुद्ध प्रकाश में देखता है, इसी का नाम सम्प्रज्ञात समाधि है। यह स्थिति प्राप्त हो जाने के बाद साधक जिस स्थिति में रहता है, उसका दर्णन भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार किया है—

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।

अर्थात् जिसके रोम रूपों से हर समय प्रकाश की लहरें निकलें और योगी हर समय एक शुद्ध प्रकाश में बैठा रहे तो समझ लेना चाहिए कि योगी को सत्वोदय हो गया और वह योगी सम्प्रज्ञात योग की एक भारी स्थिति को प्राप्त हो गया। यह शुद्ध स्थिति प्राप्त हो जाने के बाद योगी सम्प्रज्ञात समाधि में समाधिस्थ हो जाता है। ऐसी स्थिति में शुद्ध प्रकाश के उदय हो जाने पर साधक को अपने इष्टदेव के दर्शन बराबर होने लगते हैं, ऐसे ही गोस्वामी तुलसीदास को भी यह दर्शन बराबर होते रहते थे। इसलिये उनके राम-नाम उच्चारण करने में यह ताकत थी कि एक बार राम-नाम के उच्चारण करने से हजारों पापियों का भला कर सकते थे। यह था मन की एकाग्रता और योग का फल। इसलिये सब प्रकार की साधनाओं का आधार एकमात्र योग ही है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! क्या पातंजलि योग दर्शन में इस प्रकार का कोई प्रमाण है, जिसमें मंत्र का जाप एवं उसका ध्यान करना जरूरी हो?

उत्तर : हां पुत्र! योग-दर्शन में ऐसे बहुत से प्रमाण हैं। देखो! ईश्वर का दर्शन कर लेने के बाद एवं उसकी सर्व सामर्थ्यता एवं सर्व ज्ञातव्य शक्ति के बतला देने के बाद भगवान पतंजलिदेव ईश्वर का नाम बतलाते हैं। श्री पतंजलि जी कहते हैं कि—

'तस्य वाचक: प्रणव:।'

अर्थात् ईश्वर का बोधक नाम प्रणव है, किन्तु बोधक नाम प्रणव है। इतना कहने-मात्र से काम सिद्ध नहीं हुआ। तत्प्रत्युत् श्री पतंजलि जी को यह कहना पड़ा कि—

तज्जपस्तदर्थभावनम्।

अर्थात् वह ईश्वर का ज्ञान कराने वाले प्रणव नाम को जपते

हुये उसके अर्थ का ध्यान भी करना चाहिये। पढ़िये व्यास-भाष्य की पंक्तियां—

प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावना, तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च भावयतश्चित्तमेकाग्रं सम्पद्यते, तथा चोक्तं— स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्।

अर्थात् प्रणव का जप करते हुए एवं प्रणव के अर्थ का ध्यान करते हुये जो मनुष्य योगाभ्यास करता है, उसका चित्त एकाग्र हो जाता है और चित्त के एकागृ हो जाने के बाद—

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरा- याभावश्च।

अर्थात् प्रणव का जप करने पर और उसका ध्यान करने पर मनुष्य आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त होता है। पढ़िये व्यास भाष्य की पंक्तियां :—

ये तावदन्तराया व्याधिप्रभृतयस्ते तावदीश्वर-प्रणिधानान्न भवन्ति स्वरूप- दर्शनमप्यस्य भवति, यथैवेश्वरः पुरुषः शुद्धः प्रसन्नः केवलोऽनुपसर्ग-स्तथाऽयमपि बुद्धेः प्रतिसंवेदी यः पुरुष इत्येव-मधिगच्छति।

अर्थात् प्रणव के जप करने पर अर्थात् जप करते हुये ईश्वर को आत्म निवेदन करने पर उस प्रत्युत चेतन की प्राप्ति होती है एवम् अन्तराओं की निवृति होती है। व्यासदेव जी महाराज औपनिषदिक सिद्धान्त को ले करके इन्हीं भावों की पुष्टि करते हुए स्पष्टीकरण के साथ लिखते हैं कि—

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।

अर्थात् स्वाध्याय करते हुए मनुष्य योग ध्यान को प्राप्त करे और योग ध्यान करते हुए स्वाध्यायार्थ परमात्मा का चिन्तन करे। स्वाध्याय और योग-ध्यान का खजाना जहां भरता चला जाता है, वहां परमात्मा का प्रकाश अवश्य हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में—

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणामास्थितो योगधारणाम्।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

अर्थात् सब द्वारों पर नियन्त्रण करके व मन को हृदय में रोक करके मूर्धा में प्राण प्रवेश करा करके योग-धारणायुक्त योगी ओऽम् अक्षर का उच्चारण करता हुआ और मेरी याद करता हुआ जों शरीर को छोड़कर जाता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। आचार्य तपोनिधि के पवित्र उपदेश को सुन करके एवं गुरु-शिष्य की इस प्रकार प्रश्नोत्तरी को सुन करके जिज्ञासु-समुदाय सभी कृतार्थ हो गया। हर्षोल्लास में आ करके आचार्य तपोनिधि की जय, योगाचार्य श्री तपोनिधि जी जय की ध्वनियों से आकाश को गुंजायमान कर दिया। आचार्य पुनः माध्याह्नक नित्य क्रियाओं के लिये पुनः पर्णशाला में प्रवेश कर गयें साधक वृन्द एवं जितनी सन्त मण्डलियां इधर-उधर के आश्रम से आई थीं, वे सभी सत्संग की पवित्र चर्चा करते हुए अपने-अपने आश्रमों को चली गईं एवं गृहस्थी लोग अपने-अपने गृहों को लौट गये। आश्रम के शान्त वातावरण में एक ध्वनि गूँज रही थी। एक प्रकार से आशीर्वाद मिल रहा कि-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मां कश्चिद दुःखभाग्यभवेत्।।

अर्थात् सभी लोग सुखी रहें। सभी लोग रहित रहें, सभी लोग कल्याण को देखें एवं किसी को किसी प्रकार का भी दुःख न रहे।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

योगी की सर्वज्ञातृत्व शक्ति

प्रश्न : हे गुरुदेव! मैंने कई बार सत्संग में यह सुना है कि योगी के अन्दर ऐसी शक्ति आ जाती है कि वह जो भी कुछ जानना चाहता है, संकल्प मात्र से जान लिया करता है। क्या यह बात बिल्कुल सत्य? मैंने तो अभी तक यही सुना था कि केवल मात्र ईश्वर ही सर्व शक्तिमान् सर्वज्ञ हैं, फिर आपके सत्संगों में यह भी सुना है कि योगी के मन के अन्दर सर्वज्ञता के ज्ञान का उदय हो जाता है। क्या यह बात ठीक है?

उत्तर : अपने बच्चे की पवित्र भावनाओं देखकर श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया कि— हे पुत्र! तुम्हारा यह प्रश्न बिल्कुल ठीक है, इसमें कोई भी शंका की बात नहीं सर्वज्ञ बीज की पराकाष्ठा ईश्वर में ही है और उससे बढ़कर कोई और सर्वज्ञ नहीं होता। किन्तु उस ईश्वर में लयता प्राप्त करने वाले योगी भी अवश्य सर्वज्ञातृत्व शक्ति को पा लिया करते पातंजल योग-दर्शन में भगवान पतंजलिदेव जी ने ईश्वर में निरतिशय सर्वज्ञ बीज की पराकाष्ठा का वर्णन किया है। वह प्रसङ्ग इस प्रकार से है—

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।

इस पर व्यास भाष्य—

यदिदमतीतानागतम् प्रत्युत्पन्नं प्रत्येक समुच्चयातीन्द्रियहणमल्पं बह्विति सर्वज्ञ बीजम्, एतद्धिवर्द्धमानं यत्र निरतिशयं स सर्वज्ञः अस्ति काष्ठाप्राप्तिः सर्वज्ञ बीजस्य सातिशयत्वान् परिमाणवदिति यत्र काष्ठाप्राप्तिर्धानस्य स सर्वज्ञः स च पुरुषविरेष इति, सामान्यमात्रोपसंहारे कृतोपक्षयमनुमानं न विशेषप्रतिसत्तौ समर्थमिति, तस्य संज्ञादिविशेषसप्रतित्पत्तिरागमतः पर्य्यन्वेष्या। तस्यात्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम् ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामीति। तथा चोक्तं आदिविद्धानिर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद् भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच।

अर्थात् अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न प्रत्येक समुच्च अतीन्द्रिय ज्ञान सर्वज्ञबीज कहलाता है और यह बढ़ता हुआ जहां पराकाष्ठा को पहुँच जाता है वही सर्वज्ञ कहलाता है। सर्वज्ञ बीज का अतिशयाक्रान्त होने से पुरुष विशेष ईश्वर सर्वज्ञ कहलाता है। क्योंकि अनुमान जो है सामान्य अर्थ का प्रतिपादक होता है, विशेष प्रतिपत्ति वेदों से ही जाननी चाहिए। ईश्वर का संसार के कार्यों में अपना कोई प्रयोजन नहीं है। भूतानुग्रह ही ईश्वर का प्रयोजन है। क्योंकि ईश्वर यह चाहता है कि मैं ज्ञान धर्मोपदेश के द्वारा कल्प एवं महा प्रलयादि में भी संसारी मनुष्यों का उद्धार करूँगा, पुरुषों का उद्धार करूँगा। इसीलिये कहा गया है कि आदि विद्वान, आदि गुरु परमेश्वर हिरण्यगर्भ ने निर्माण चित्त का आश्रय लेकर जिज्ञासु आसुरी को तन्त्र का उपदेश किया। इसीलिये हे पुत्र! ईश्वर परम सर्वज्ञ हैं, किन्तु उनका ध्यान करने वाले योगी जन भी समाधि बल से सर्वज्ञ बन जाते हैं। यही योग-विद्या की बहुत बड़ी महानता है।

प्रश्न : आचार्य तपोनिधि जी के उपदेश को सुनकर उनके जिज्ञासु बालक ने प्रश्न किया कि हे प्रभो! यह तो ठीक है कि योग-विद्या परम महान है, किन्तु मैं तो योग के सही अर्थ को भी वस्तुतः नहीं समझता हूँ कि योग है क्या? इसका उपदेश मुझे कृपा कर करिये और समाधि किसको कहते हैं, इसके कितने भेद होते हैं? उसका सब भेद कृपा कर मुझे समझाइये ताकि मैं भी योग-समाधि का अधिकारी बन जाऊँ।

उत्तर : हे पुत्र! सुनो, हम तुम्हें समझाते हैं कि योग किसे कहते हैं और समाधि का क्या अर्थ है एवं उसके कितने भेद हैं? और चित्त की कौनसा भूमिका में योग की वर्णाक्षरी प्रारम्भ होती है? यह सभी कुछ अब आगे के उपदेश में तुम्हें समझाते हैं। सुनो— योग शब्द का अर्थ इतना व्यापक एवं महत्वशाली है कि सभी सिद्धान्तवादियों ने उसको अपने हृदय से अपनाया है।

भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग, कर्मयोग, लययोग, हठयोग, शून्ययोग आदि-आदि ये सभी शब्द इसकी व्यापकता के परिचायक हैं। इस संसार में जन्म लेने वाला प्राणी कोई भी

ऐसा नहीं होगा, जिसको योग की सच्ची जिज्ञासा न हो, किन्तु 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' के अनुसार हर एक व्यक्ति ने इसको अपनी मति के अनुसार प्रयोग किया। जो लोग हृदय प्रधान हैं और ईश्वर की अर्चना, वन्दना आदि के रूप में लक्ष्य प्राप्ति के लिए संलग्न हैं, उन्होंने इसको भक्तियोग तथा जो लोग ज्ञान-निष्ठा प्रधान हैं, वे महावाक्यों का मनन करते हुए भी वेदान्त सिद्धान्तों के अनुसार आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील हैं। उन्होंने ज्ञानयोग से, इसी प्रकार जो ईश्वरार्पित बुद्धि से निष्काम भाव से कर्म करते हुए कर्म-बन्धन से छूटकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्होंने इसे कर्मयोग के नाम से अपनाया है।

इसके अतिरिक्त योग के व्यापक प्रभाव और महानत को देखकर कुछ दम्भी लोगों ने भी इस शब्द को अपनाकर दक्षिणी पिशाचिनी आदि छोटी-छोटी तामस, राजस शक्तियों की आराधना कर सिद्धियों को पाकर संसार के भोले-भाले व्यक्तियों को चमत्कार में डालकर अपनी दाम्भिक पूजा कराई और अपने को योगी सिद्ध किया। इसके अतिरिक्त जिन्होंने हर एक योग के कुछ साधनों को कहीं से सीख लिया, उन्होंने योगाश्रम कायम कर लिये और केवलमात्र नेति-धौति आदि षटकर्म व आसन बन्ध-मुद्राओं के द्वारा शारीरिक साधनायें ही इन लोगों का परम लक्ष्य बन गया। इसी प्रकार से बिना अष्टांग योग की साधना के ही किन्हीं लोगों ने भू-गर्भ, जल-गर्भ आदि समाधियां लगाकर योग के व्यापक शब्द से लाभ उठाया। यह सब योग का वास्तविक अर्थ न समझकर ही उसकी लापरवाही के कारण हुआ।

वस्तुत: ठीक प्रकार से विचार कर देखा जाय तो योग शब्द का अर्थ है मिलाने वाली क्रिया। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार युज् धातु से सन्धानार्थ शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है मिलना। ''युंज् समाधौ''से योग का अर्थ है 'समाधि'। योगाचार्य भगवान श्री पतंजलि जी ने ''योगश्चित्तवृत्ति निरोध:'' कहकर योग शब्द की अभिव्यक्ति की। निरोध शब्द का अर्थ है हमारी शास्त्रीय परिभाषा में निरोध: समाधि से व इसी प्रकार योग शब्द का अर्थ योग, समाधि आदि वचनों से समाधि ही सिद्ध होता है। समाधि शब्द का अर्थ उपनिषदों में ''समाधि समतावस्था जीवात्म: षरमात्मन:'' से जीवात्मा व परमात्मा की समतावस्था का नाम ही है। किन्तु ''योगश्चित्तवृत्ति निरोध:' इस सूत्र से केवलमात्र चित्त वृत्ति निरोध को योग कहा है। न कि ''सर्व चित्तवृत्ति निरोध:'' को योग कहा है। क्योंकि इस सूत्र में सर्व शब्द का ग्रहण नहीं है। इसलिए योग की सम्प्रज्ञात व असम्प्रज्ञात दोनों अवस्थाओं का नाम योग शब्द वाच्य है। इसी कारण से **''वितर्क विचारानन्दास्मिता- नुगमात् सम्प्रज्ञात:''** कहकर सम्प्रज्ञात योग व **''विराम प्रत्ययाभ्यास पूर्व: संस्कारशेषोभ्य''** कहकर असम्प्रज्ञात योग का कथन किया गया है। सम्प्रज्ञात समाधि को दूसरे शब्दों में एकाग्रावस्था व निरोधावस्था कहना चाहिए। सारे संसार के प्राणियों के चित्त पांच अवस्थाओं में रहा करते हैं—

(१) मूढ़ावस्था के प्राणी—

जिनमें तमोगुण प्रधान रहता है तथा रज और सत्वगुण हो जाया करते हैं। इस अवस्था के चित्त वालों की प्रवृत्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से आवृत्त रहा करती है और जो आलस-तन्द्रा में घिरे रहते हैं, किसी भी प्रकार उनकी उदर-पूर्ति होती रहे, इसके अतिरिक्त किसी के हिताहित, लोक, परलोक से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(२) क्षिप्तावस्था के प्राणी—

जिनमें रजोगुण प्रधान रहता है। तमोगुण व सतोगुण गौण रहने के कारण इनके मन में चञ्चलता, दु:ख, शोक, चिन्तायें बनी रहती हैं। लौकिक साधना ही उनका परम लक्ष्य रहता है, सांसारिक कार्य-धन्धे (बिजनिस) व्यापार के अतिरिक्त परलोक आदि में इनकी आस्था नहीं होती है।

(३) विक्षिप्तावस्था के प्राणी—

जिनमें सतोगुण प्रधान रहता है, रजोगुण और तमोगुण गौण रहता है। इनके मन में पूर्ण प्रसन्नता, क्षमा, दया, परोपकार की भावना और साधनों में संलग्नता, ज्ञान, धर्म और वैराग्य में पूरी-पूरी अभिरुचि रहती है, इनका मन थोड़ा-थोड़ा एकाग्रता की ओर चलता है तथा शान्त रहता है। ये लोग स्वाध्याय, संकीर्तन, उपासनायें आदि करते हैं, किन्तु एकाग्रता के बिना इस भूमिका के प्राणी भी योग श्रेणी के नहीं माने जाते हैं।

(४) एकाग्रावस्था के प्राणी—

जिनमें सतोगुण प्रधान रहता है, रजोगुण और तमोगुण वृत्ति मात्र में शेष रहते हैं। इनका मन **'दृष्टानुश्रविक-विषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञावैराग्यम्'** होकर अपर वैराग्य को प्राप्त होता है। मनुष्य का मन बहुत बड़ा अद्‌भुत और शक्तिशाली है। वस्तुत: विचार कर देखा जाय तो प्रभु की सृष्टि के बड़े-बड़े अद्‌भुत कार्य मन की प्रकाग्रता से ही सम्पन्न होते हैं।

(५) निरोधावस्था के प्राणी —

जिनमें बाहर से गुणों का परिणाम बन्द होकर चित्त-सत्त्व में

निरोध परिणाम संस्कार मात्र से शेष रह जाता है। ऊपर वर्णन की हुई पांचों प्रकार की अवस्थाओं में केवल मात्र एकाग्रावस्था व निरोधावस्था को ही योग श्रेणी में लिया है। संसार का कोई भी प्राणी किसी भी प्रकार की साधनायें करता है, जब तक मन में एकाग्रता का उदय नहीं होता तब तक उसका योग में प्रवेश नहीं माना जा सकता। भगवान पतञ्जलि जी ने—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार- धारणा-ध्यानसमाधयोऽष्टावाङ्गानि।

कहकर अष्टाङ्ग योग का वर्णन किया है। अङ्ग अङ्गी से अलग नहीं होते। इस विचार से अष्टाङ्ग योग के किसी भी एक अङ्ग का पालन करने वाला भी योग का विद्यार्थी तो है ही। उनमें से यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार से पांच अङ्ग धारणा, ध्यान सम्प्रज्ञात समाधि, असम्प्रज्ञात समाधि, की अपेक्षा बहिरंग है। भगवान पतञ्जलि जी के शब्दों में किसी एक में चित्त को बांधना धारणा कहलाती है—

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

धारणा से ही सम्प्रज्ञात योग का श्री गणेश होता है। धारणा सिद्ध हो जाने पर मन के अन्दर योग प्रवेश की योग्यता हो जाती है। धारणा की सिद्धि से प्राप्त हुई योग्यता वाला मन, जिसकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो चुकी है, संप्रज्ञात योग का अधिकारी बनता है। सम्प्रज्ञात योग का अधिकारी व अभ्यासी योगी अपने प्रथम अभ्यास में वितर्कानुगत योग का अभ्यास करता है। जिसमें वह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पांच महाभूतों का तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनके गुणों को प्रत्यक्ष करता है। इस वितर्कानुगत योग में पंचभूत और पंचभूतों से होने वाले सब विस्तार का और इनके सब विषयों को पूर्ण प्रत्यक्ष करता हुआ साधक अपने अभ्यास में पृथ्वी तत्त्व में सुरम्य वन, उपवन और नाना प्रकार की दिव्य सुगन्धों को अनुभव करता है। जल तत्त्व में महान नाना प्रकार के समुद्र एवं दिव्य-रसों का अनुभव करता है। अग्नि तत्त्व में अनेक विधि ज्वालाओं और महान दिव्य रूपों का अनुभव करता है। वायु तत्त्व में दिव्य स्पर्शों का अनुभव करता है और आकाश तत्त्व में शून्य आकाश और आकाश से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के शब्दों को सुनता है। इस वितर्कानुगत योग में सवितर्क और निर्वितर्क दो अलग-अलग भेद हैं। सवितर्क समाधि-

तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः।

अर्थात् वितर्कानुगत समाधि से शब्द, अर्थ और उसका ज्ञान मिला हुआ सा होने पर बराबर अलग-अलग भाषित होते रहें, वह सवितर्क समाधि कहलाती है। इसका अभ्यास करते-करते चित्त ध्येयाकार हो जाये। शब्द, अर्थ, ज्ञान न रहे तब तक निर्वितर्क समाधि कहलाती है। इस विषय को इस प्रकार समझ लेना चाहिए—

जैसे साधक के ध्यान में एक गाय है और लम्बे गले वाली, दो सींगों वाली, सफेद रंग, चार पैरों वाली गाय एक पशु है और उस गाय का मन में ज्ञान होना कि वह एक गाय है, यही ज्ञान है। ये तीनों शब्द, अर्थ और ज्ञान एक विषयक होते हुये भी अलग-अलग समझ में आते रहें। ऐसी स्थिति का नाम सवितर्क समाधि है।

जिसमें साधक का मन ध्येयाकार बन जाय, शब्द, अर्थ और ज्ञान अलग-अलग अनुभव में न आकर अर्थमात्र ही भाषित होता रहे, वह निर्वितर्क समाधि है।

स्मृति परिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्र- निर्भासा निर्वितर्का।

विचारानुगत योग—

निर्वितर्क समाधि की पराकाष्ठा में पहुँच जाने के बाद मनुष्य का मन सूक्ष्म विषयों में प्रवेश करता है। अभी तक वितर्कानुगत योग में उसने स्थूल महाभूतों का और उनके विषयों को प्रत्यक्ष किया था, किन्तु अब विचारनुगत योग में महाभूतों की अपेक्षा उनसे सूक्ष्म तन्मात्र का प्रत्यक्ष करना है। जैसे वितर्कानुगत समाधि में स्थूल महाभूत आकाश व उसके गुण शब्द का अनुभव किया था। अब विचारानुगत योग में सूक्ष्म आकाश या शब्द तन्मात्र का अनुभव करेगा। इसी प्रकार वायु में सूक्ष्म वायु तत्व यानी स्पर्श तन्मात्र, अग्नि में सूक्ष्म अग्नि तत्व या रूप तन्मात्र, जल में सूक्ष्म जल तत्व या रस तन्मात्र, पृथ्वी में सूक्ष्म पृथ्वीतत्त्व या गंध तन्मात्र का अनुभव करेगा। इसके साथ-साथ दस इन्द्रियों— मन, बुद्धि, अहंकार को प्रत्यक्ष करेगा। इसी प्रकार इन सूक्ष्म विषयों में होने वाली समाधि का नाम सविचार समाधि है। जिस प्रकार वितर्कानुगत समाधि के सवितर्क और निर्वितर्क के दो भेद हैं। इसी प्रकार विचारानुगत समाधि में सविचार और निर्विचार दो भेद हैं। सूक्ष्म विषय की सीमा प्रधान अलिंग तक है।

सूक्ष्म विषयत्वचालिङ्ग पर्यवसानम्।

जैसे हमने किसी भी तन्मात्र का सूक्ष्म ध्यान आरम्भ किया। उसका अनुभव, देश, काल व निमित्त से सीमित अनुभव होता रहे व ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों अलग-अलग भाषित होते रहें, इसका नाम सविचार समाधि है। जिस समाधि में ध्येय विषय, देश काल निमित्त से सीमित न दिखलाई दे तो वह निर्विचार समाधि कहलायेगी। इस

विचारानुगत योग में मनुष्य प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयवों को पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है तथा सूक्ष्मता की परिधि को पहुँच जाता है, क्योंकि योगी इसमें सूक्ष्म मन का, सूक्ष्म इन्द्रियों का, सूक्ष्म बुद्धि और अहंकार का पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है। इसलिए इसमें दैविक शक्तियों का विकास हो जाता है। इस स्थिति के योगी को दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, दूर-स्पर्श आदि स्वत: ही होने लगता है। इसके साथ-साथ सूक्ष्मदेव लोकादि भी अनुभव में आने लगते हैं और उन सब मायिक स्थानीय देवताओं को देखकर भी योगी अपने आपको इन सबसे उत्कृष्ट देखता है। बुद्धि के आमोद-प्रमोद आह्लादित सूक्ष्म विषयों को प्रत्यक्ष करता है और अपने आपको पूरा आनन्दमय देखता है। ऐसी स्थिति में देवलोग अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। उस समय योगी को बहुत सचेत होकर रहने की आवश्यकता है। भगवान पतंजलिदेव जी की आज्ञा है कि—

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणम् पुनरनिष्ट-प्रसङ्गात्।

ये चारों प्रकार की समाधियां सबीज कहलाती हैं। यहां तक कि संसार का बीज बना रहता है।

मनुष्य संसार से परे नहीं हो पाता, इसलिए स्थूलार्थ में सवितर्क और निर्वितर्क और सूक्ष्मार्थ में सविचार और निर्विचार समाधियां सबीज हैं। किन्तु निर्विचार समाधि ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-त्यों उसकी स्थिति निर्मल बनती चली जाती है। पुरुष को प्रकृति-पर्यन्त सब सूक्ष्म पदार्थ शीशे की तरह चमकते हुए दिखाई देने लगते हैं, तब—

निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः।

निर्विचार समाधि की निर्मलता में योगी को स्फुट-प्रज्ञा लोक होता है।

काफी देर के सत्संग के पश्चात् योगाचार्य श्री तपोनिधि जी ने सत्संग को विश्राम दिया और शिष्य-मण्डली को आदेश दिया कि वे लोग अपनी-अपनी कुटिया में जाकर नित्य नैमित्यिक कर्म करते हुए अपने साधना-क्रम को चलायें।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

योगाचार्य तपोनिधि जी का दिव्य आश्रम

आज योगाचार्य श्री तपोनिधिजी के आश्रम में कोई विशेष प्रकार का महोत्सव मालूम पड़ है। रंग-बिरंगी पताकाओं से स्वागत-द्वार सजा दिये गये हैं। स्थान-स्थान पर वेद-मन्त्र लिखे हुए दिखाई दे रहे हैं। इधर-उधर से योगाभ्यासियों की मण्डलियां एकत्रित हो चुकी हैं। स्थान-स्थान पर शुभ्र वस्त्र धारण किये ब्रह्मचारी लोग खड़े हैं। मालूम पड़ता है कि आज कोई प्रतियोगिता है। इसलिये अपने-अपने यौगिक क्रियाओं के प्रदर्शन के लिये एवं योगासनों को दिखाने के लिये ब्रह्मचारी लोग आचार्य के आदेश की प्रतीक्षा में खड़े हैं। श्री योगाचार्य जी अपनी पर्णकुटीर से बाहर आ करके पण्डाल में उपस्थित हुये । पण्डाल में उपस्थित देखा और प्रतियोगितायें प्रारम्भ करने का आदेश दिया। शनैः-शनैः एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी क्रमशः टोलियां आती रहीं और ब्रह्मचारी वर्ग ने अपनी-अपनी यौगिक क्रियाओं को और विशेषतः योगासनों को बहुत ही उत्कृष्टता के साथ दिखलाना आरम्भ किया। निर्णायक लोग अपने-अपने आसनों पर दायें-बायें आसीन थे, उन सभी लोगों ने जिस-जिसकी जिस प्रकार की योग्यता देखी, अपने-अपने निर्णय निर्धारित कर लिये। लगभग दो या तीन घंटे के समय के अन्तर्गत ही प्रतियोगितायें हो चुकीं। प्रतियोगिताओं के हो जाने के बाद विभिन्न स्थानों से आये हुए विद्वान प्रवक्ताओं ने यौगिक व्यायाम सम्बन्धी अपने-अपने भाषण दिये। योगोत्सव का कार्यक्रम सभी प्रकार से सम्पूर्ण हो जाने के बाद श्री योगाचार्य जी ने उपसंहार में अपना भाषण आरम्भ किया। योगाचार्य जी ने कहा— भगवान सदाशिव ने अपने ग्रन्थों में ८४ लाख योनियों का वर्णन किया है और ८४ लाख योनियों में विचरने वाले जितने जीव हैं, उन सभी के आसन, शयन आदि कार्य होते रहते हैं। आसन शब्द का शब्दार्थ है—

आस्यते अनेन इति आसनम्।

अर्थात् जिस विधि से बैठा जाये, उस विधि का नाम ही आसन है। ८४ लाख योनियों के अन्दर जन्म लेने वाले जीव— येनकेन प्रकारेण आसन-शयन एवं भ्रमणादि। करते हैं। इसलिये उनके बैठने की जो क्रिया है वह उनका आसन है। भगवान सदाशिव ने जितनी योनियां हैं उतने ही आसनों का वर्णन अपने मुखारविन्द से किया है, किन्तु वे सर्व शक्तिमान सदाशिव घट-घटवासी अन्तर्यामी प्राणीमात्र की गति को समझने वाले अवश्य ही सब कुछ कर सकते हैं। ''**कर्त्तुमकर्त्तु अन्यथां कर्त्तुम्**'' की ताकत वाले हैं। अतः ८४ लाख योनियों के अन्दर जहां-जहां भी जीवों ने जन्म लिया है, उन सबकी आसन-शयन विधि को परमेश्वर पहले से ही जानते थे, इसलिये उनका इस प्रकार से वर्णन करना कोई असम्भव बात नहीं थी। किन्तु वह सब भगवान शिव के कहे हुए ८४ ला, आसन आजकल ग्रन्थों में पूर्णरूपेण उपलब्ध नहीं हैं और उन सभी आसनों का वर्णन करना सर्व साधारण के लिए सर्वथा असम्भव है। इसलिये आजकल के योग प्रचारकों ने और घिरण्ड आदि महर्षियों ने जिन आसनों का वर्णन किया है वे अधिक से अधिक चौरासी या प्रयास करने पर सौ या डेढ़ सौ तक मिल जाते हैं, जो योगाश्रमों की व्यायाम-शालाओं में योगापदेशक लोग कराते हैं, किन्तु उन सबमें भी चौरासी आसन ही इस प्रकार के हैं जो सर्व साधारण के लिए विशेष लाभप्रद हैं। भगवान पतंजलिदेव ने आसन का लक्षण लिखते हुए योग-दर्शन में—

''**स्थिर सुखमासन्**'' कह करके आसन की परिभाषा की है। इन शब्दों का अर्थ है कि जिसके करने से स्थायी सुख की प्राप्ति हो, बैठने की इस क्रिया को आसन कहा है। इस सूत्र का भाष्य लिखते हुए भगवान व्यास देवजी ने कुछ आसनों के नाम लिखे हैं— पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तीक आसन, पर्य्यक आसन आदि नाम भी लिखे हैं। '**स्थिर सुखमासनम्**' कहने से मनुष्य का जिस भी उपाय से स्थिर सुख लाभ हो उस ही क्रिया को आसन कहा जा सकता है। किन्तु भगवान व्यासदेव ने उनका स्पष्टीकरण कर दिया, क्योंकि उन्होंने खास-खास आसनों के नाम अंकित किये। दूसरे पाणिनीय व्याकरण के नियमानुसार—

आस्यते अनेन इति आसनम्।

अर्थात् बैठने की क्रिया का ही नाम आसन हमारे ग्रन्थों में मिलता है।

आसन सिद्धि का प्रयत्न—

आसन करने का क्या फल है? हर एक पशु-पक्षी की बैठने की विधि से हम बैठना सीखें और वैसा करने से हम किस परिणाम को पहुँचंगे। किसी भी आसन के अभ्यास से हम स्थिर सुख लाभ तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब वह क्रिया हमें पूर्णरूपेण सिद्ध हो जाये। स्थिर सुख का अर्थ है— कायम रहने वाली शान्ति। वह उस हालत में उपलब्ध नहीं हो सकती कि हम एक क्षण में अपने पैरों को बदलते रहें, हाथों को बदलते रहें, ऐसा करने पर तो मन की शान्ति की अपेक्षा अशान्ति ही रहेगी, क्योंकि वह क्षण-क्षण में दुःख अनुभव करता रहेगा और बदलने की क्रिया करता रहेगा। इसलिये स्थिर सुख लाभ तो हमें इसी हालत में हो सकती है, जबकि हम जिस आसन से बैठें उसी की दुःखानुभूति न हो प्रत्युत यह अनुभव होता रहे कि हम बहुत हल्के हैं और एक आनन्द में बैठे हैं। हमें अपना शरीर रुई की मानिन्द हल्का मालूम पड़ने लगे तो समझ लेना चाहिये कि हमारा यह आसन का अभ्यास आसन सिद्धि की ओर जा रहा है। परमार्थ जिज्ञासु साधु लोग जंगलों में एक-एक से कई-कई घण्टे बैठने के प्रयत्न में लगे रहते हैं, किन्तु इस प्रकार का अभ्यास करते हुये उनको वर्षों व्यतीत हो जाते हैं फिर भी ये लोग आसन सिद्ध नहीं कर पाते। भगवान पतंजलिदेव ने आसन सिद्धि का एक उपाय लिखा है, वह बहुत ही उत्कृष्ट है और तथ्य से कहा जाये तो उसी का अवलम्ब लेने से मनुष्य पूर्णरूपेण आसन सिद्धि को प्राप्त हो सकता है। जो शास्त्रोक्त उस उपाय का अवलम्बन नहीं लेते उनका प्रयत्न 'अकर्णात कर्णम् श्रेय' के नियमानुसार यत्किंचित ठीक ही है, किन्तु आसन सिद्धि और स्थिर सुख को चाहने वाले व्यक्तियों के लिये भगवान पतञ्जलिदेव के कहे हुये निम्नाङ्कित उपाय का अवलम्ब लेना परमावश्यक ही है।

प्रयत्नशैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम्।

अर्थात् आसन सिद्धि प्राप्त करने के लिये एक ऐसे उपाय की आवश्यकता है जिससे प्रयत्न शैथिल्य होकर अनन्त समापत्ति हो जाय। जब तक मनुष्य का मन पूर्णरूपेण एकाग्र नहीं हो पाता तब तक वह आसन सिद्धि के लिये प्रयत्न करता ही रहता है और अनन्त समापत्ति उससे हजारों कोष दूर रहा करती है। अनन्त समापत्ति का अर्थ है अखण्ड मण्डलाकार व्यापक परमात्मा के स्वरूप में अपने आपको विलीन कर देना। कहीं-कहीं पर योगाचार्य लोग शेषनाग के ध्यान को भी अनन्त समापत्ति कहते हैं। किन्तु कुछ भी हो, उस अनन्त परमात्मा में मन विलय हो जाने पर योगी को यह नहीं रहता कि उसका शरीर किस स्थिति में पड़ा है या बैठा है। आज घोर कलिकाल के समय में भी इस प्रकार के दृश्य देखने में आते हैं कि जहां पर श्री गुरुदेव के पूर्णानुग्रह से शक्तिपात हो जाने पर जिन साधकों के मन एकाग्र होते हैं और वह लोग बाह्य बोध शून्य हो जाते हैं, उनको दो दिन के अन्दर ही कई-कई घण्टे लगातार एक-आसन से बैठे हुये देखा गया है। इस प्रकार की घटनायें जहां-जहां पर शक्तिपात दीक्षायें दी जाती हैं, वहां पर स्वाभाविक घटित होती रहा करती हैं।

एक दिव्य घटना—

एक स्थान पर किसी योगिराज ने अपने एक शिष्य पर शक्तिपात किया और योगदीक्षा दी और वह लड़का एक आसन से बैठ गया। शक्तिपात के फलस्वरूप उसके मन की इतनी ऊँची एकाग्रता हुई कि उसका मन उस सर्व शक्तिमान में अनन्त में विलय हो गया और वह पहले दिन ही जड़वत् पत्थर की मूर्ति की तरह से कई घण्टे लगातार बैठा रहा और कई दिन के निरंतर अभ्यास हो जाने के बाद उस साधक की इस प्रकार की स्थिति आई कि वह अनन्त समापत्ति से लगातार २४/२४ घण्टे एक ही आसन से बैठा रहा करता था और गुरुदेव उसको स्वयं चेतना देकर यह बोध कराया करते थे कि तुम्हें इतना लम्बा समय हो गया है, अब तुम उठ जाओ और बाहर जाकर मल-मूत्रादि का त्याग करो। इस प्रकार की दृढ़ स्थिति अनन्त समापत्ति का ही विशद परिणाम था। आसन सिद्धि का यही सरल एवं उच्चतम उपाय है। जो जिज्ञासु इस प्रकार कृपा का लाभ प्राप्त कर लेते हैं उनके आसन स्वत: ही सिद्ध हो जाया करते हैं।

आसन सिद्धि का परिणाम—

ततो द्वन्द्वानभिघात्।

शीतोष्णादिभिर्द्वन्दैरासन जयान्नाभि भूयते।

अर्थात् आसन सिद्धि का सबसे बड़ा फल द्वन्द्वान्भिघात अर्थात् द्वन्द्वों से न सताया जाना। सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि के जोड़े को द्वन्द्व कहते हैं। जिस व्यक्ति को आसन सिद्ध नहीं होता उसका सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि की तृष्णा सताती रहा चरती है और द्वन्द्वों से दबाया हुआ वह व्यक्ति कभी भी साधना की पूर्णता को नहीं पा सकता। इसलिये आसन सिद्धि का द्वन्द्वान्भिघात सबसे ऊँचा परिणाम है। अत: जो लोग परमार्थ जिज्ञासु हैं उनको शास्त्रोक्त विधि से आसन-जय प्राप्त करने के लिये अनन्त समापत्ति अवश्य करनी चाहिये। ये आसनों के करने का पारमार्थिक लाभ है।

योगासन और प्राणायाम

आजकल संसार में विविध प्रकार के व्यायामों का प्रचार है। जो लोग कसरत करना, मुगदर चलाना, रस्सी खींचना, वजन उठाना आदि-आदि बहुत प्रकार के व्यायामों को करते हैं, इन व्यायामों को करने वाले लोग बड़े-बड़े हट्टे-कट्टे एवं विश्व-विजयी पहलवान दिखलाई देते हैं। एक पहलवान को अपने शरीर पर बड़ा भारी अभिमान होता है कि उसके किये हुए व्यायामों के फलस्वरूप उसके शरीर में इतनी बड़ी दृढ़ता आ गई है कि उसकी मांस ग्रन्थियों को यदि बर्छियों से भी काटा जाय तो वह कट नहीं सकतीं। इस प्रकार के प्रदर्शन लोग स्थान-स्थान पर करके दिखलाया करते हैं। अपने भुजदण्डों को फुला लेते हैं और दूसरे व्यक्तियों से कहते हैं हाथों के मुक्कों से व लकड़ी के डण्डों से उनको पीटें किन्तु परिणाम कुछ भी नहीं हो पाता। पीटने वाले थक जाते हैं किन्तु उनके उस तनाव में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आ पाती। अपने व्यायाम के इस परिणाम को देखकर वे लोग बड़े हर्षान्वित होते हैं और समझते हैं कि हमें यह बड़ा अलभ लाभ हुआ है। किन्तु बात ऐसी नहीं होती जैसी वह लोग अपने मन में समझते रहते हैं। उनके उस व्यायाम से एक ही जगह इतनी दृढ़ता इसलिये आ जाती है कि उनके शरीर के छोटे-छोटे स्नायु जिनका काम है सारे शरीर में रक्त का उचित मात्रा में वहन कर उनका वह सब जमाव वहां ही कर डालते हैं। अत: जो कार्य सारे शरीर को स्वस्थ रखने के लिये होना चाहिए था वह जाता रहता है और परिणाम स्वरूप वह पहलवान लोग भी जिन्होंने कई हजार दण्ड और बैठक की हैं बार-बार रोगी दिखलाई देते हैं और अन्त में उनके शरीर इतने भारी हो जाते हैं कि उनको अपना शरीर भी स्वयं भार ही दिखलाई देने लगता है। चलने-फिरने, उठने-बैठने से भारी आलस्य महसूस करते हैं। उनके शरीर की ग्रन्थियों में जगह-जगह दर्द होने लगते हैं, यह परिणाम अन्यान्य प्रचलित व्यायामों में भी होते हैं, जिनका तनाव के शरीर के एक भाग पर ही अधिक मात्रा में पड़ता है। इसलिए सभी व्यायामों का अन्तिम परिणाम केवल दु:ख निकलता है।

एक और बात

संसार में एक किंवदन्ती आमतौर पर लोग जानते हैं कि हमारा जीवन प्राणों पर निर्भर है और कहने वाले यह भी बतलाते हैं कि मनुष्य अपने जीवन में गिनी हुई श्वासों की संख्या को लेकर आया करता है। जितना अधिक वह श्वासों के खजाने को बचाकर रखेगा उतना ही उसका जीवन स्वस्थ एवं लम्बा होता चला जायेगा और जौ किसी भी लापरवाही से अपने श्वासों का दुरुपयोग करते हैं वह शनै:-शनै: अपनी मृत्यु को बुलाते जाते हैं और थोड़े ही समय में काल के ग्राम बन जाते हैं। अत: यह सिद्ध हुआ कि अपने श्वासों की निधि को व्यर्थ व्यय नहीं करना चाहिये।

श्वासों का अपव्यय कैसे होता है?

अत: हमें यह विचार लेना चाहिये कि हमारे श्वासों का आना-जाना किस प्रकार से अधिक मात्रा में होता है। अधिकांश में जो लोग विलासी हैं उनके श्वांस बहुत जल्दी ही फूल निकलते हैं, वे थोड़ा सा भी कोई काम करें तो हांफने लगते हैं और उनको इतनी घबराहट होती है कि अब हमारे प्राण कभी भी निकल सकते हैं। उनके दिल की धड़कन बहुत अधिक मात्रा में होने लगती है। इसके अतिरिक्त जो लोग ऐसे व्यायाम करते हैं जिनमें श्वासों का यातायात अधिक मात्रों में होने लगता है, वह अपने श्वासों के खजाने को जल्दी ही लुटा बैठते हैं और थोड़े समय के बाद ही इस पवित्र जीवन से हाथ धोना पड़ता है। अत: स्वास्थ्य को उत्तम रखने के लिये अपने श्वासों के खाजने की सुरक्षा भी बहुत आवश्यक है। इसलिये योगी लोग प्राणायाम करते हैं और उसके परिणामस्वरूप वे लोग कालजित हो जाते हैं, अर्थात् मौत पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

यौगिक व्यायाम का शरीर पर प्रभाव

ऊपर हम शास्त्रीय विधि से योगासनों द्वारा परमार्थिक लाभ का वर्णन कर चुके हैं। प्रत्येक योगासन के करने से पारमार्थिक लाभ अवश्यम्भावी और मन की एकाग्रता का जनक है, क्योंकि हमारे चित्त की प्रसार-भूमि हमारे शरीर की नाड़ियां हैं। यदि हमारा स्नायु मण्डल पूर्णरूपेण शुद्ध नहीं रहता है तो हमारी मन की एकाग्रता भी पूर्णरूपेण नहीं हो सकती। नाड़ी शुद्धि के लिये यौगिक व्यायाम परम उपादेय है। इसके अतिरिक्त योगासनों का व्यायाम हमारे उन आचार्यों का निकाला हुआ व्यायाम है जो चित्त के सभी परिणामों को समझने वाले थे एवं भूत, भविष्य के ज्ञाता थे। वे उनके निश्चित किये हुये सिद्धान्त सभी पतन से परे हैं, क्योंकि वह लोग सब प्रकार से परिपूर्ण थे आप्त काम थे और हरेक क्रिया के भूत, भविष्य के परिणामों को भली प्रकार से समझने वाले थे। इसलिये योगासनों का व्यायाम हमारे लोक व परलोक के लिये एक सिद्ध व्यायाम है। योगासनों के करने से दण्ड व बैठकों की भांति शरीर के किसी एक भाग पर ही तनाव नहीं पड़ता। प्रत्युत शरीर के हर भाग पर जगह-जगह पर उसका प्रभाव पड़ा करता है। जो लोग नित्य नियम से योगासन करने वाले हैं, उनका स्वास्थ्य परमोज्वल रहता है। स्वस्थ शब्द का अर्थ है

जिसमें अपने स्वरूप में स्थित रहे और स्वस्थ के भाव को ही स्वास्थ्य कहते हैं। योगासनों का व्यायाम भी एक प्रकार का व्यायाम है, जिससे शरीर पूर्णरूपेण स्वस्थ रह सकता है। पादहस्थ आसन, पश्चिमोत्तान, ऊर्ध्व पश्चिमोत्तान, उष्ट्रासन आदि आसनों के करने में ऐड़ी से लेकर नितम्ब भाग तक के सभी स्नायुओं में पूरी-पूरी उत्तेजना मिलती है और उड्डियान बन्ध आदि स्वाभाविक ही लगने से जठराग्नि पूर्णरूपेण प्रदीप्त होता है। मल विसर्जनी नाड़ियाँ उत्तेजना पाकर मल का पूर्णरूपेण परित्याग करने लगती हैं। धनुरासन, शलभासन, नाव आसन, भुजंगासन इत्यादि आसनों के करने से शरीर के कटिभाग में पूरा-पूरा तनाव पड़ता है, फेफड़ों का प्रसार होता है। अत: फेफड़ों की शुद्धि, कटिभाग की दृढ़ता, शरीरमान की वृद्धि आदि परिणाम इन आसनों के करने से अवश्यम्भावी हैं। इसके अतिरिक्त मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, शलभ, गर्भासन, वकासन, मयूरासन आदि सब आसन पेट से सम्बन्ध रखने वाले हैं इनके करने से सभी प्रकार के उदर विकार अवश्य नष्ट हो जाते हैं। पेट बहुत नरम रहता है किसी प्रकार के यकृत, प्लीहा आदि के दोषों का स्वाभाविक समूलोन्मूलन हो जाता है। वात, पित्त आदि के गुल्म रोग स्वभाव से ही हट जाते हैं और इसी प्रकार से सर्वांगासन, हलासन, पूर्वोत्तान, ताड़ासन, वृक्षासन आदि-आदि आसनों के करने से नीचे की ओर होने वाली रक्त की गति थोड़ी देर के लिये शिरोभाग की ओर होने लगती है और उसके परिणामस्वरूप सिर व छाती की सब बीमारियाँ यकृत, प्लीहा आदि की वृद्धि अनायास ही दूर हो जाती है। जो लोग शीर्षासन के या अन्य आसनों के अभ्यासी हैं उनको कठिन वीर्य विकार— जो किसी भी औषधोपचार से प्राय: असम्भव है वे थोड़े दिन में दूर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो आसनों के नित्य करने के अभ्यासी हैं और दूध, घी आदि की मात्रा उचित रूप से सेवन करने वाले हैं वे लोग इन अभ्यासों के द्वारा अपनी युवावस्था कायम रख लेते हैं। उनका मुख मण्डल देदीप्यमान दिखलाई देता है। आजकल के इस घोर कलिकाल के समय में भी इस अवनि मण्डल पर दिखलाई देते हैं। जो शीर्षासन आदि योग के प्रमुख आसनों का घण्टों अभ्यास नित्य नियम से करते हैं जो लोग शीर्षासन का लगभग दो घण्टे का अभ्यास यथार्थ विधि से बढ़ा लेते हैं, वे लोग काल पर विजय प्राप्त करते हैं। हमने अपने योग प्रचार के भ्रमण में कई इस प्रकार के व्यक्तियों को देखा है जो शीर्षासन के अभ्यासी हैं और उनकी सैकड़ों वर्ष की आयु होने पर भी वह सब प्रकार से स्वस्थ हैं। उनके शरीर को देखकर कोई कह नहीं सकता कि ये कोई वृद्ध होंगे। युवाओं जैसी उनकी बातचीत है। दाँत, दाढ़, कान और नेत्रादि इन्द्रियां पूर्णरूपेण काम करती हैं। यह उनके नैत्यिक व्यायाम का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त आसनों से पारमार्थिक लाभ होता है। जो लोग हठाभ्यास करते हैं, जिनका लक्ष्य राजयोग है वे इन्हीं आसनों को करते हुए अपने शरीर में पूर्ण जागृति कर लेते हैं।

योगासन एवं कुण्डलिनी जागरण अथवा कुण्डलिनी प्रबोध

हमारे शरीर में योगाचार्यों के मतानुसार लगभग ७२ हजार नाड़ियों का वर्णन मिलता है। उन ७२ हजार नाड़ियों के अन्दर कुछ प्रमुख नाड़ियां हैं जो शरीर के विशेष-विशेष भागों में अपना काम करती रहती हैं। उन नाड़ियों में से १४ नाड़ियां मुख्य हैं—

सुषुम्णेडा पिंगला च, गान्धारी हस्ति जिह्वका।
कूहू सरस्वती पूषा, शंखिनी च पयस्विनी।।
वारुणालम्बुषा चैव, विश्वोदरी यशस्विनी।
एतासु तिरस्त्रो मुख्याः पिङ्गलेडा सुषुम्णिका।।

सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला, हस्त, जिह्वा, कूहू, सरस्वती, पूषा, शंखिनी, पयस्वी, वरुणा, अलम्बूषा, विश्वोदरी एवं यशस्विनी। ये चौदह नाड़ियां मुख्य मानी गई हैं और इन चौदह में से इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा ये तीन प्रमुख नाड़ियां हैं और इन तीनों में भी सुषुम्ना नाम की नाड़ी प्रमुख है। ये ही ब्रह्मद्वार है। सुषुम्ना द्वार को खोल करके ही जीवात्मा शक्तिरूप होकर ही शिव में लय हो जाता है। सुषुम्ना मूलाधार कमल से उठकर ब्रह्मरंध्र तक पहुँचती है और इसके मुख-द्वार को कुण्डलिनी नाम की नाड़ी ।।३।। लपेटा लगाकर बैठी हुई है। सुषुम्ना द्वार में उसका मुख है जब तक वह महाशक्ति नहीं जग जाती तब तक मनुष्य देवताओं का पशु रहा करता है। उस महाशक्ति को जगाकर ही लोग देवता कहलाते हैं, क्योंकि उनकी शक्ति जागृत हुई होती है और शक्तिवान बन जाते हैं। मनुष्य की कुण्डलिनी सोई रहती है इसलिये वह दर-दर का भिखारी रहता है, दीन-हीन रहता है और शक्तिवानों की विनय करके यथा तथा अपना जीवन-निर्वाह करता है, वह महाशक्ति कुण्डलिनी गुरुदेव की परम अनुकंपा से प्राणायाम से या अन्य हठयोग की विविध साधनाओं से जग जाया करती है। हमारे योगासनों में इस प्रकार के आसन सम्मिलित हैं जिनका अनवरत अभ्यास करने से महाशक्ति कुण्डलिनी जग जाया करती है और साधक सामर्थ्य को पा जाता है। भद्रासन, पश्चिमोत्तान, वज्रासन और शीर्षासन सभी आसन कुण्डलिनी प्रबोध करने वाले हैं। बहुत से हठाभ्यासी महात्मा जिनकी राजयोग में विशेष अभिरुचि नहीं है और

जिन्होंने अपना लक्ष्य हठयोग ही बनाया है वे कुण्डलिनी जागरण के लिये हठयोग की ही विशेष साधनाओं में लगे रहते हैं। हमने श्री वृन्दावन में करोली-कुञ्ज में एक ब्रह्मचारी को देखा जो वज्रासन, भद्रासन, शक्तिचालिनी मुद्रा और शीर्षासन- इन सभी आसनों को कुण्डलिनी जागरण के लिये कई-कई घंटों करते रहते हैं। हमने उनके दर्शन प्राप्त किये और वार्तालाप में उन्होंने बताया कि वह कई वर्षों से इसी हठ-साधना में लगे हुए हैं और इस विषय में उनका थोड़ा सा ही कार्य शेष रह गया है जो लगभग २ वर्ष में पूरा हो जायेगा। २ वर्ष बाद जब हम उनके आश्रम पर गये तो पता चला जिसे उनके आस-पास के सम्पर्क वाले लोगों ने बताया कि उनके दृढ़तापूर्वक अभ्यास से कुण्डलिनी प्रबोध हुआ और उसके फल-स्वरूप उनके प्राण ब्रह्माण्ड में जाने लगे व उनको अनवरत समाधि बनी रहने लगी। उनके सहवासियों को भी चमत्कार दिखलाई दिये। अन्ततः उनको तीव्र वैराग्य हुआ और वे कहीं वनों में चले गये। कहने का अभिप्राय यह है कि योगासनों के जिन लाभों को दृष्टिपथ में रख करके योगाचार्यों ने लिखे हैं वे लाभ केवलमात्र इसी लोक से सम्बन्ध रखने वाला नहीं प्रत्युत् परलोक का दाता भी है।

— क्रमशः

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

शिष्य ने आगे फिर पूछा— हे गुरुदेव! आपके पवित्र व्याख्यान को सुनकर मेरे मन में बहुत प्रसन्नता बढ़ी योगासनों से जो-जो अनुपम लाभ हो सकते हैं उनको मैं भली प्रकार से समझ गया हूँ। मैं तो अभी तक योगासन को केवल मात्र शारीरिक व्यायाम ही समझता था किन्तु आज आपका व्याख्यान सुन करके बहु अनुपम लाभ हुआ और मैं यह जान सका कि योगासन करने से एवं योगासनों से सम्बन्धित शक्ति-चालिनी आदि मुद्राओं के करने से महाशक्ति कुण्डलिनी का प्रबोध नहीं हो सकता है। अब आप कृपा करके मुझे एक बात और समझा दीजिये कि नैत्यिक यौगिक व्यायाम करने वाले एवं योगाभ्यास करने वाले योगियों का आहार-विहार कैसा होना चाहिए।

उत्तर : हे पुत्र! तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है, आहार शुद्धि अवश्य होनी चाहिये। क्योंकि हमारे शास्त्र कहते हैं कि—

आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।

अर्थात् आहार शुद्धि होने पर सतोगुण का विकास होता है और सत्वशुद्धि होने से ध्रुवा-स्मृति प्राप्त होती है। सत्वशुद्धि ही समाधि की दात्री है। जिस प्रकार से योगानुष्ठान आसन, प्राणायाम आदि करने से बराबर विवेक-ख्याति पर्य्यन्त रूपेण संयम है, जो योगी अपने आहार को बिल्कुल सात्विक दैहिक आहार यना लेता है उसके शरीर में स्वाभावतः दिव्य गुणों का प्रकाश हो जाया करता है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता के सत्रहवें अध्याय में तीन प्रकार के आहारों का वर्णन किया है और वे आहार सत्व प्रधान प्राणियों को रज प्रधान प्राणियों एवं तमोगुण प्रधान प्राणियों को अपनी-अपनी आकृति के अनुसार प्रिय होते हैं।

सतोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार—

आयुः सत्त्वबलारोग्य सुखप्राप्ति विवर्धना।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्याआहाराः सात्त्विक प्रियाः।।

अर्थात् आयु वृद्धि करने वाले, सत्त्व वृद्धि करने वाले, बल को बढ़ाने वाले, रसीले, चिकने, जिनकी शक्ति कायम रहने वाली है, जो हृदय की पुष्टि करने वाले हैं अर्थात् जो स्वभाव से ही रुचिकर हैं ऐसे आहार सात्त्विक कहलाते हैं और वह सतोगुण प्रधान व्यक्तियों को ही अच्छे लगते हैं। जिन आहारों का लक्षण जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने ऊपर के श्लोकों में किया है वे सारे के सारे गुण गो-घृत, दूध, मक्खन, मलाई आदि पेय पदार्थ गेहूँ, चना, जौ या रसीले सेव, सन्तरा, अंजीर और मौसम्मी आदि फल घीया, बथुआ आदि तोरई, चौलाई, पालक, मेंथी आदि पत्ती के साग और पवित्र कन्दमूलों का आहार ये सब सात्त्विक आहार हैं, इनके सेवन करने से मन में सतोगुण का ही विकास होगा। बुद्धि पवित्र होगी और सतोगुण प्रधान हो स्वभावतः यही गुण प्यारे भी लगेंगे।

रजोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार—

कत्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्ण रुक्ष विदाहिनः।
आहार राजसस्येष्टा दुःख शोकामय प्रदाः।।

अर्थात् कडुवे, कषैले आदि खट्टे आम की खटाई तथा ज्यादा नमक वाले, अत्यन्त गर्म जिनमें बहुत अधिक मिर्च पड़ी हों और रूखे व खुश्क तेज मिर्चों के पकौड़े आदि और इसी प्रकार के जो शरीर में दर्द देने वाले, गर्मी पैदा करने वाले, दुःख और चिन्ता को पैदा करने वाले भोजन रजोगुण को बढ़ाने वाले होते हैं। जो रजोगुण प्रधान व्यक्ति हैं उन्हें ये सब भोजन प्रिय होते हैं।

तमोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार—

यातयामं गतरसं पूर्ति पर्यषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामस प्रियम्।।

अर्थात् रस रहित, दुर्गन्धयुक्त, वासी, उच्छिष्ट एवं रस रहित भोजन तमोगुण को बढ़ाने वाला है और तामसी व्यक्ति को ही वह प्रिय होता है। जैसे पहले दिन बने हुए जिन पर से रात उतर चुकी है और गतरस हो जाते हैं, ऐसे भोजन तम प्रधान होते हैं। जितने जिस-जिस स्वभाव के व्यक्ति संसार में रहते हैं उनको उसी प्रकार का खान-पान, रहन-सहन प्रिय हुआ करता है। योगी के लिये सात्विक बन जाना बहुत आवश्यक है, जब तब उसके अन्दर सतोगुण की वृद्धि नहीं होती तब तक वह परम लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहेगा। इनके साथ-साथ एक बात का और ख्याल रखना

आवश्यक है कि मन की शक्ति सब आहारों में परिवर्तन कर देती है। दूध, घी, फल, कन्दमूल, साग-सब्जी ये सब भोजन सात्विक हैं। किन्तु कोई पाप कमाई करने वाला ऐसे आहार खिलाता है तो उनमें उसके मन का असर रहा करता है। सुनते हैं ननकाना साहब में एक बार गुरु नानकदेव के सामने एक नवाब की ओर से घृत पक्व सुमधुर भोजन आया और दूसरी ओर से दो सूखी रोटी कोई किसान ले करके आया। गुरु नानकदेव ने वह रोटियां स्वीकार कर लीं, किन्तु वह भोजन स्वीकार नहीं किया। लोगों ने उनसे हठ करके पूछा कि क्या कारण है इतने पवित्र घी, दूध के भोजन को आपने त्याग दिया और सूखी जौ की रोटियों की आपने स्वीकार कर लिया। गुरु नानकदेव ने जवाब दिया इन सूखी रोटियों में दूध है और इस घृत पक्व में खून है, तमोगुण है। इसलिये ऐसे तमोगुण प्रधान भोजन मुझे रुचिकर नहीं थे। यह कहकर उन्होंने पूड़ी उठाकर निचोड़ी सूखी रोटी उठाकर निचौड़ी। रोटियों से दूध व पूड़ियों से खून गिरने लगा। लोगों ने इस चमत्कार को देखकर बड़ा आश्चर्य माना। इसलिए मनुष्य को चाहिये कि भोजन सात्विक करे। वह नेक कमाई का हो तो सोने पर सुहागा होगा। इसके अतिरिक्त भगवान ने गीता में आज्ञा दी है—

युक्ताहार विहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अर्थात् जिनका आहार विहार युक्त है, जिनका सोना व उठना युक्त और जिसकी हर चेष्टा नियमित होती है उनके लिये योग दुःखों का नाश करने वाला है। इसलिये सात्विकी आहार के साथ-साथ युक्ताहार विहार के नियम का पालन करना भी बहुत आवश्यक है। मनुष्य को भोजन खूब चबा-चबाकर करना चाहिये। दूध को थोड़ा-थोड़ा करके पीना चाहिये। दूध को थोड़ा-थोड़ा करके पीना चाहिये, इसके साधकों को यह अनुभव होता रहे कि चबाया हुआ पदार्थ पेट में पहुँचते ही हजम हो चुका है। आधा पेट भोजन करे, आधा जल से और चतुर्थ भाग वायु के लिये खाली रहने दें। इस प्रकार का आहार व्यक्ति के लिये पूर्ण लाभदायक है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! आपने जो युक्ताहार विहार का नियम बतलाया है क्या यह नियम सभी के लिये सामान्य रूप से लागू है? मैंने तो यह सुना था कि योगासन करने वालों को भूख अधिक लगने के कारण आहार पर नियन्त्रण नहीं करना चाहिये? और शीर्षासन आदि के विषय में तो यह सुना है कि प्रचुर मात्रा में काफी आहार करना चाहिए और कभी भी भूखा न रहना चाहिए। अब आप कहते हैं कि योगी को आहार-विहारयुक्त होना चाहिए। कृपा करके मुझे समझाइये कि इसमें यथार्थता क्या है?

उत्तर : हे पुत्र! इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि एक नौ जवान शीर्षासन आदि करता है और वह अपने आहार को इतना संयम कर दे कि सहन शक्ति से बाहर हो, उसका परिणाम भी अवश्य खराब निकलता है, ऐसे व्यक्तियों को भूखा नहीं रहना चाहिए न ही उपवास करना चाहिये। उपरोक्त नियम उन परमार्थ जिज्ञासुओं के लिए है, जो हर समय स्वाध्यायशील हैं और समाहित हैं। नैत्यिक व्यायाम करने वाले नौजवानों के लिये उपयुक्त आहार करना व भूख को न मारना आवश्यक है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! इस योगासन करने वाले अभ्यासियों के लिये कोई और आवश्यक पालनीय नियम्र हैं तो कृपा कर मुझ अपने अज्ञान बालक के लिये उनका और उपदेश कर दीजिये, ताकि मैं योगासनों का विधि पूर्वक अभ्यास करता हुआ अपने आपको कृतार्थ कर सकूँ।

उत्तर : हां पुत्र! योगासनों को करते हुए हर साधक को ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहिये। हमारे पूर्वजों ने ब्रह्मचर्य-व्रत की शिक्षा का बहुत बड़ा उल्लेख किया है। यदि एक व्यक्ति उपरोक्त विधि से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता हुआ योगासन का अभ्यास करता है, तो वह निश्चित ही समाधि तक पहुँच जाया करता है। ब्रह्मचारी शब्द का अर्थ वैय्याकरणों के सिद्धान्तानुसार—

ब्रह्माणि चरतुं शीलमस्यातीत ब्रह्मचारी

अर्थात् ब्रह्म के अन्दर विचरने वाली जिसकी आदत पड़ गई है वह ब्रह्मचारी कहलाता है और दूसरे शास्त्रों में वीर्य को ब्रह्ममाना है। भगवान ने शिव ने शिव-संहिता में-

अहं बिन्दु रज शक्तिः।

अपने आपको बिन्दु स्वीकार किया है और रज को शक्ति माना है। इसके अतिरिक्त और भी स्थान-स्थान पर वीर्य को ब्रह्म रूप से वर्णन किया है। अत: जब तक ब्रह्मरूप वीर्य शरीर में व्यापक होकर नहीं रहेगा तब तक मनुष्य योगाभ्यास का अधिकारी बनता ही नहीं, उसमें भी वह हथाभ्यास से कोषों दूर रहता है। यदि कोई विलासी व्यक्ति अपने आपको हठयोगी बनाना चाहता है तो उसका यह प्रयास इसी प्रकार का प्रयास है, जैसे कोई बालक हाथ से चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है। अत: योगासन करने वाले व्यक्ति के लिये यदि कोई आसनों के उच्चतम परिणाम को देखना चाहता है तो उसके लिए ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना भी बहुत ही अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य किसको कहते हें? उसके विषय में हमारे आचार्य लिखते हैं—

कर्मणा मनसा वाचा, सर्वावस्था सुसर्वदा।
सर्वत्र मैथुन त्यागो, ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते।।

अर्थात् सब अवस्थाओं में मन, वाणी और कर्म से सर्वदा मैथुन त्याग ही ब्रह्मचर्य है। मूत्राशय और मलाशय के ऊपर मणिपूरक में वीर्य का कोष रहता है। शरीर में व्यापक वीर्य इधर-उधर की कामुक तरंगों से द्रवित होकर वहां इकट्ठा हो जाता है और उस स्थान में इकट्ठा होने पर वीर्य शरीर में पुन: व्यापक नहीं हो पाता और कामोद्रेकों से वह स्खलन की ओर ही जाता है। इस प्रकार के विचारों से वीर्य का कोष बार-बार खाली होता रहता है। अत: ब्रह्मचर्य-व्रत धर्म करने वालों के लिए यह परम आवश्यक है कि ये वीर्य को शरीर में व्यापक करने के लिए कोई-न-कोई व्यायाम अवश्य करते रहें। किन्तु अन्य व्यायामों की अपेक्षा जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, यौगिक व्यायाम ही परमोत्कृष्ट है, जिसके करने से शरीर की हर एक नाड़ी ठीक प्रकार से रस-रक्त के वहन करने वाली बनती है। योगासनों के करने से सभी स्नायु सबल हो जाते हैं। छोटी-छोटी शिरायें भी अपने कार्य को ठीक करती हैं। यथोचित मात्रा में स्थान-स्थान पर रस-रक्त को पहुँचाती हैं। अत: योगासनों के द्वारा बहुत जल्दी वीर्य शरीर में व्यापक हो जाता है। कुछ आसन तो इस प्रकार के हैं जिनके करने से वीर्य, वीर्यकोष की ओर न जाकर ऊर्ध्व-गमन करता है, ऐसे ब्रह्मचारी कुछ दिन में ही ऊर्ध्व-रेतस बन जाते हैं। भगवान शिव ने शिव-संहिता में स्पष्ट कर दिया है—

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने, किन्न सिद्धयन्ति भूतल।
उध्वरिता भवेद्यस्मात् तावत्, काल भयं कुत:।।

अर्थात् प्रयत्न करके जो लोग बिन्दुजय करते हैं, वे संसार में सभी कार्य कर सकते हैं। जिन्होंने अपने आपको उर्ध्वरेतस बना लिया है, उनको काल, भय उपस्थित नहीं होता। इसलिए योगासनों के अभ्यासी को ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना भी उसका आवश्यकीय कर्त्तव्य है। बहुत जगह पर इस प्रकार की घटनाएँ देखने में आती हैं, जिन्होंने भोग के साथ योग को चाहा, उन्होंने अनायास अपनी मृत्यु को बुला लिया। ब्रह्मचर्य रहित विलासी व्यक्ति यदि योगासन का अभ्यास करते हैं तो **''अकर्णात् कर्मण श्रेय:''** के नियमानुसार कुछ न कुछ तो ठीक होगा ही, किन्तु उत्कृष्ट फल की प्राप्ति उसी हालत में हो सकती है कि वह सावधानी के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करें। ब्रह्मचारी के शरीर में व्यापक हुआ वीर्य उसको अतुल बल देता है। योग दर्शन में भगवान पतंजलिदेव ने स्पष्ट सीधे शब्दों में लिख दिया है—

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ:।

इसका अर्थ करते हुए व्यासजी महाराज ने और भी ऊँचे शब्दों में ब्रह्मचर्य की इन शब्दों में प्रशंसा लिखी—

यस्य लाभद प्रतिघान, गुणानुत्कर्षयति।
सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञान माधातुसमर्थो भवतीति।।

अर्थात् ब्रह्मचारी अलौकिक गुणों को धारण करता है एवं सिद्ध हो जाने पर अपने शिष्यों में शक्तिपात करने की ताकत वाला हो जाता है। अत: जो लोग योग आसन करते हुए और पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करेंगे, उनके शरीर में अलौकिक गुणों का प्रकाश होना स्वाभाविक है। ब्रह्मचर्य-व्रत का यह अर्थ नहीं कि जंगलों में घूमने वाले साधु, जटा-जूटधारी जीवन भर शादी न करें तो वही ब्रह्मचारी कहलाने के अधिकारी हैं। यदि कोई जटा जूटधारी व्यक्ति ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन नहीं करता तो गृहस्थितयों से बदतर हो सकता है और जो गृहस्थी अपने गृहस्थ धर्म को निभाता हुआ ऋतुकालानुगामी है और केवल मात्र सन्तानोत्पत्ति के लिये वीर्यधान करता है वह अवश्य ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता है। इसलिये यह नहीं समझना चाहिये कि ब्रह्मचारी शब्द का प्रयोग घरबार त्यागी साधुओं के लिये ही किया गया है। प्रत्युत् गृहस्थी भी स्वदारनिरत होकर सन्तानोपत्ति के लिये गृहस्थ उपभोग करते हुए अवश्य ब्रह्मचारी ही है और उस प्रकार के ब्रह्मचर्य-व्रत का फल उनका शरीर उनको बतलाता ही रहेगा।

प्रश्न : हे गुरुदेव! आपने जो ब्रह्मचर्य की महिमा बतलाई, उसको जानकर मेरे मन में बहुत ही प्रसन्नता बढ़ी, किन्तु संसार की मोह माया में ग्रस्त रहने वाला प्राणी अपने मन की चञ्चलता को किस प्रकार हटाये है? कृपा करके उसके लिये कोई उपयुक्त साधन बतलाइये, जिससे उर्ध्वरेतसता प्राप्त हो सके और मन की चञ्चलता का समोलोन्मूलन हो जाये।

उत्तर : हे पुत्र! मन की चञ्चलताका समोलोन्मूलन तो केवलमात्र निरोधावस्था में ही हो पाता है, किन्तु यदि कोई व्यक्ति नैत्यिक योगासन करते हुए उर्ध्वरेतस प्राणायाम भी करता है तो उसके मन की चञ्चलता नष्ट प्राय: हो जाया करती है। ऊर्ध्वरेतस प्राणायाम की दो विशेष प्रकार की विधियों का हम तुम्हें उपदेश करते हैं। उनका यथार्थत: पालन करने से अवश्य ही उर्ध्वरेतसता प्राप्त हो जायेगी और उसके साथ ही साथ मन की चञ्चलता का भी अवश्य नाश हो ही जायेगा। वे विधियां इस प्रकार हैं—

प्रथम विधि—

योगासन करने वाले साधक त्रिकोण आसन भली प्रकार जानते हैं। पहले साधारण रूप से सीधे खड़े हो जायें फिर सहसा अपने प्राणों को नासिका रन्ध्रों से एकदम बाहर निकाल दें और निकाल देने पर नाभि के नीचे के भाग को जहां पर मलमूत्र विसर्जनी नाड़ियाँ रहती हैं उस भाग को

अपने दाहिने हाथ से बायीं ओर से दाहिने ओर मल करके प्राण को बाहर रोके हुए ही बांयीं ओर को घुटना झुका कर त्रिकोण आसन की विधि से घुटना झुकाकर त्रिकोण आसन करलें और उसके बाद धीरे-धीरे प्राण को भीतर ले आयें किन्तु भीतर रोकने की आवश्कता नहीं है, फिर प्राणों को समान गति से चलने दें, इसी प्रकार से फिर दूसरी बार पूरे प्राणकोष को बाहर निकाल कर नाभि के नीचे के भाग फिर दाहिने हाथ से ऊपर की ओर मलकर प्राण को बाहर रोके हुए दाहिनी ओर का घुटना झुका करके त्रिकोण आसन की विधि से आसन करें। जब तक प्राण बाहर रहें तब तक उस आसन को कायम रखें और ज्योंही घबराहट शुरू हो और प्राण भीतर जाने लगें तो आसन भी छोड़ दें, साथ-साथ यह धारणा करते रहें कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ। ऐसा करने से मूत्राशय और मलाशय के ऊपर रहने वाला वीर्यकोष भी अवश्य ऊपर की ओर आकर्षित हो जायेगा और इस क्रिया को करने वाला व्यक्ति ऊर्ध्वरेतस हो जायेगा।

उर्ध्वरेतस प्राणायाम की दूसरी विधि—

सिद्धासन में बैठ जाइये, सिद्धासन करने की विधि है कि साधारण रूप से अपने बांये पैर की एड़ी को गुदा द्वार के आगे के लिंग नाल के नीचे दृढ़ता से जमा कर रखें और दूसरे पैर की एड़ी को लिंग नाल के ऊपर रखें वह ऐड़ियां इस प्रकार रखी हुई हों जिनकी ग्रन्थी भाग (टकनी) बिल्कुल समसूत्र रूप से मिले हुए से हों इस प्रकार जमायें। नीचे की ऐड़ी को थोड़ा दृढ़ करके रखें। जहां यह ऐड़ी रखी जाती है वहीं से वीर्य वाहिनी नाड़ी जाती है, इसके दबाव से वह नाड़ी दब जाती है और इस नाड़ी के दब जाने से वासनिक आकर्षण कम हो जाता है। इस प्रकार अपने पैरों को जमाकर और दोनों हाथों को घुटनों पर जमाकर समकाय शिरोग्रीव की विधि के अनुसार शरीर को समसूत्रता में रखकर सीधा बैठ जाय। ठोड़ी को थोड़ा झुकाकर छाती में लगाये, पेट भीतर की ओर खिंचा हुआ हो इसको सिंहासन कहा है। इस आसन से बैठकर ऊपर बतलाई विधि के अनुसार अपने सारे शरीर के प्राण को एकदम बाहर निकाल दे और उड्डयान बन्ध लगा ले। उड्डयान बन्ध के साथ-साथ मूल द्वार का आकर्षण भी ऊपर की ओर स्वाभाविक हो जायेगा। प्राणों को बाहर की ओर रोके रखें। जिस समय प्राण बाहर रुका हुआ हो और उड्डयान बन्ध लगा कर मूल द्वार का ऊर्ध्वाकर्षण किया हुआ हो उस समय अपने मन में धारणा करें कि मैं वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ, फिर उसके बाद जब घबराहट हो तो प्राण को अन्दर ले आयें, किन्तु अन्दर रोकें नहीं। इस प्रकार के तीन प्राणायाम रोज करने से वीर्य विकारों में अनुपम लाभ होता है और इसके साथ-साथ उपयुक्त खान-पान मिलता हो तो इन्हीं प्राणायामों को २०-२१ तक भी बढ़ाया जा सकता है, किन्तु हर साधक को अधिक मात्रा में प्राणायाम नहीं करना चाहिए केवल मात्र वीर्य विकार वाले रोगियों को रोग निवृत्ति के लिये दो या तीन प्राणायाम कर लेने चाहिये। ऐसा करने से उनको अवश्य लाभ होगा।

शिष्य :— हे गुरुदेव! आपके योगासन सम्बन्धी उपदेशों को सुन करके और ब्रह्मचर्य-व्रत की शिक्षाओं को सुन करके बहुत ही हर्ष हो रहा है। मालूम पड़ता है, मेरे जीवन में यह एक बहुत ही बड़ा परिवर्तन है। मैंने योगासनों के महत्त्व को अभी तक शारीरिक व्यायाम ही समझा था, किन्तु मैं आपके इस पवित्र उपदेश को पाकर अपने आपको बिल्कुल कृत-कृत्य समझता हूँ। मैं समझता हूँ कि पवित्र यौगिक व्यायाम करते हुए एवं ऊर्ध्वरेतस आदि प्राणायाम करते हुए मैं अपने-आपको कृत-कृत्यता के उच्चतम लक्ष्य की ओर ले जा सकूँगा। अब मुझे प्रतिक्षण आपके हार्दिक आशीर्वाद की आवश्यकता है। हे प्रभो! मैं आपके चरण-कमलों में बारंबार प्रणाम करता हूँ और साथ ही साथ यह भी प्रार्थना करता हूँ और साथ ही साथ यह भी प्रार्थना करता हूँ कि अब आप मुझे कृपा करके क्रमश: योगासनों का उपदेश दीजिये और उनसे होने वाले लाभों को भी समझाइये जिससे मैं अपने आपको कृतार्थ कर सकूँ।

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

भगवती भागीरथी के तट पर एक दिव्य योगाश्रम विद्यमान है। चारों ओर आश्रम की दीवारों पर योगपरक उपदेश एवं यौगिक स्मृतियों के, एवं योगदर्शन आदि की प्रमाणित व्याख्यायें लिखीं हुयी हैं। आज योगाश्रम में बहुत ही विशेष-विशेष प्रकार का चहल-पहल है। आगन्तुक लोगों का समाज चारों तरफ से इकट्ठा हो चुका है। आने वाला जिज्ञासु समुदय गृहस्थ और विरक्त दोनों ही प्रकार का है। इस समाज के हाव-भाव से मालूम पड़ता है कि यह सब साधक समुदाय ही है। पारस्परिक चर्चायें चल रही हैं। इन परस्पर की चर्चाओं में वार्तालाप करते हुए सभी लोग परस्पर बातें करते हुए अपनी-अपनी ध्यानानुभूतियों को कहकर परस्पर आमोद-प्रमोद बढ़ा रहे हैं। योगाचार्य श्री तपोनिधि जी के आगमन की प्रतीक्षा है। उनके पवित्र उपदेश सुनने की सभी के मन में पवित्र जिज्ञासा हे। आचार्य के आगमन के हर्षोल्लास में एकत्रित जिज्ञासु समाज ने अपने मनों को एकाग्र करते हुए, गाना आरम्भ किया। हृदय में आचार्य के आगमन की तरंगे बनी हुई हैं। ऐसे उल्लास भरे मनों से लोगों ने वाद्यों के साथ गाना आरम्भ किया—

तारा है सारा जमाना प्रभो हमको भी तारो।
मैंने सुना है प्रभु केवट को तारा,
नौका का करके बहाना।
तारा है सारा ....।।
रामरती को प्रभु तुमने ही तारा,
देके आनन्द बहाना।
तारा है सारा जमाना ....।।
मैंने सुना है प्रभु सन्तों को तारा,
ध्यान का करके बहाना।
तारा है सारा जमाना ....।।
हमने सुना है प्रभु भक्तों को तारा,
देके प्रसाद बहाना।
तारा है सारा जमाना ....।।

साधकों के हर्षोल्लास को देखकर योगाचार्य योग-मञ्च पर पधारे। अपने गुरुदेव के दिव्य दर्शनों को प्राप्त करके उपस्थित समाज ने जय-ध्वनियों से आकाश तल को निनादित कर दिया। थोड़ी देर के बाद योगचर्य का संकेत पाकर सभी लोग अपने गुरुदेव का उपदेश सुनने के लिये शान्त मुद्रा में बैठ गये। श्री योगाचार्य ने अपना उपदेश आरम्भ करने से पहले कुछ वेद मन्त्रों का उच्चारण प्रारम्भ किया। आचार्य ने कहा—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनान्नाा-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थ येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वनी नेतरेषाम्।।

– कठोपनिषद्

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।25

– कठोपनिषद्

भयादस्याग्निस्तपति
भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च
मृत्युर्धावति पञ्चमः।।3

– कठोपनिषद्

अर्थात् जो नित्यों का नित्य है और चेतनों का भी चेतन है, जो बहुतों की कामनाओं को पूर्ण करता है, जो धीर पुरुष उसको अपनी आत्मा के अन्दर विराजमान देख लेते हैं, उनको ही शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है और अन्य सर्व साधारण को नहीं। उसका इतना दिव्य प्रकाश है कि उसके प्रकाश के सामने न सूर्य चमकता है न चन्द्रमा और न तारागण आदि अपना प्रभाव दिखा सकते हैं। न ही वहां पर ये बिजलियां चमकती हैं तब इस अग्नि का तो कहना ही क्या है। इनमें जो भी प्रकाश है उस ही एक अव्यक्त चेतन का है। उस एक के प्रकाश से ही ये सब चमकते हैं। उसके ही भय से अग्नि तपती है एवं उसी के भय से सूर्य चमकती है, उसी के भय से इन्द्र, वायु आदि दौड़े-दौड़े फिरते हैं

और मौत भय खाती है। किन्तु यह अव्यक्त चेतन वह सत्ता है जिसका रूप आंखों से नहीं देखा जा सकता, कोई भी प्रयत्न करने पर इसको आंखों से नहीं देख पाता। केवलमात्र मनीषी लोग अपने मन को एकाग्र करके इसको देख पाते हैं और जो इसको देख लेते हैं, वे अमृतत्व को प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु इसकी प्राप्ति का उपाय है तो क्या है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो,

न मेघया न बहुना श्रुतेन।

यमेबैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष,

आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्।।

– कठोपनिषद् ६६/२३

अर्थात् यह आत्मा बहुत प्रवचलन आदि से प्राप्त नहीं होता और न ही मेघा से प्राप्त होता है। बहुत शास्त्र श्रवणादि से भी इसकी प्राप्ति नहीं होती। किन्तु जिस पवित्र आत्मा का यह स्वयं वरण का लेता है, उस ही को प्राप्त हुआ करता है और प्राप्त हो जाने के बाद उसके शरीर को यह अपना शरीर बना लेता है अर्थात् जिसको इसकी प्राप्ति हो जाती है उसका शरीर इसका अधिष्ठान बन जाया करता है, उसी में यह रहा करता है। एक प्रकार से उसका शरीर इसका मन्दिर बन जाया करता है, जिस मन्दिर में यह आत्मा स्वयं प्रकाशित होता रहता है। योगाचार्य की इस वैदिक स्तुति को सुनकर जिज्ञासुओं के मन को परम शान्ति हुई। इस सन्दर्भ में उपदेश देते हुए योगाचार्य जी ने फिर से कहा—

यस्य देवे पराभक्तियथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते शुचिता ह्यार्थाः, प्रकाशन्ते महात्मनः।।

– कठोपनिषद् ४२५/२३

अर्थात् जिसकी ईश्वर में बड़ी भारी भक्ति होती है और जैसी ईश्वर में भक्ति होती है ठीक उसी प्रकार की गुरुदेव में भक्ति होती है, उसी उत्तम साधक को सकल अर्थ और विद्यायें प्रकाशित हो जाया करती हैं। योगाचार्य के इस पवित्र उपदेश को सुनकर जिज्ञासु समुदाय को बहुत बड़ी शान्ति उपलब्ध तो हुई हीं, किन्तु जो लोग उनके पवित्र भावों के अर्थ समझ नहीं पाये उनके मनों में तरह-तरह की कुछ शंकायें भी पैदा हो गयीं, और उन्हीं सब लोगों ने अपनी-अपनी प्रश्नावली अपने गुरुदेव के सामने प्रस्तुत करनी आरम्भ कर दी एक जिज्ञासु शिष्य ने खड़े होकर करबद्ध प्रार्थना की कि हे गुरुदेव! आपने ईश्वर और गुरुदेव दोनों में परम अनुराग की बात कहीं। कृपा करके मुझे समझा दीजिये कि ईश्वर का क्या स्वरूप है, एवं गुरुदेव का क्या स्वरूप है? जिससे कि मैं इन दोनों सत्ताओं के पवित्र स्वरूप को जाकर उनके चरणों में अपने आपको अर्पित कर सकूँ।

उत्तर : हे पुत्र सुनो! ईश्वर के स्वरूप का वर्णन तो कई बार अपने व्याख्यानों में तुम्हें समझाया है, किन्तु अब भी तुम्हारी पवित्र जिज्ञासा को देखकर उस सर्वशक्तिमान के स्वरूप को जिसके बोधक नाम ॐ का वर्णन सभी उपनिषदों ने मुक्त कण्ठ होकर किया है, भगवान पतन्जलिदेव ने योगदर्शन में इस प्रकार से बतलाया है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेषः ईश्वरः।।24।।

(समाधिपाद सूत्र २४)

अर्थात् क्लेश कर्म और कर्मों के फल तथा इसके साथ-साथ कर्माशय इनसे कभी भी जो परामृष्ट नहीं हुआ, अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक आदि से जो कभी भी छुआ तक नहीं गया, ऐसे उत्तम पुरुष को अर्थात् पुरुष विशेष को ईश्वर कहा जाता है। ईश्वर शब्द की व्याख्या करने के लिये एवं उसके स्वरूप को समझाने के लिये भगवान व्यासदेव ने निम्नांकित पंक्तियां लिखी हैं उनको गौरपूर्वक पढ़ो-

अविद्यादयः क्लेशाः, कुशलाकुशलानि कर्माणि, तत्फलम् विपाकः। तदनुगुणा वासना आशयः। ते च मनसि वर्त्तमानाः पुरुषे व्यपदिश्यन्ते, स हि तत्फलस्य भोक्तेति। यथा जयः पराजयो वा योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिस्यते यो ह्यनेन भोगेनापरामृष्टः स पुरुषविशेष ईश्वरः। कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति च बहवः। केवलिनः। ते हि त्रीणि बन्धनानि छित्त्वा कैवल्यम्प्राप्ताः ईश्वरस्य च तत्सम्बन्धों न भूतो न भावी यथा मुक्तस्य पूर्वा बन्धकोटिः प्रज्ञायते, नैवमीश्वरस्य यथा वा प्रकृतिलीन स्योत्तरा बण्धकोटिस्सम्भाव्यते नैवमीश्वरख्य। स तु सदैवेश्वर इति। योऽसौ प्रकृष्टसत्त्वो पादानादीश्वरस्य शाश्वतिक उत्कर्षः स किं सनिमित्त आहोस्विनिर्निमित्त इति। तस्य शास्त्रं निमित्तम् शास्त्रं पुनः किनिमित्तं? प्रकृष्टसत्त्व-निमित्तम्। एतयोः शास्त्रोत्कर्ष- योगीश्वरसत्त्वे वर्त्तमानायोरनादिः सम्बन्ध। एतस्मादेतद्भवति सदैवेश्वरः सदैव मुक्त इति, तच्च तस्यैश्यर्य्य तदतिशय्यते यदेवातिशयि स्यात्तदेव तस्यात् तस्माद् यत्र काष्ठाप्राप्तिरैश्वर्य्यस्य स ईश्वर इति। न च तत्समान- मैश्वर्य्यमस्ति। कस्मात्, द्वयोस्तुल्य-योरेकस्मिन् युगपत्कामितेऽर्थे नवमिदमस्तु पुराणमिदम- स्त्विति एकस्य सिद्धावितरस्य प्राकाम्यवि- धातादूनत्वम्प्रसक्तम् द्वयोश्चतुल्य-

योर्युगपत्का- मितार्थप्राप्तिर्नास्त्यिर्थर्स्य विरुद्धत्वात् तस्माद्यस्य साम्यातिशयविनिर्मुक्तमैश्वर्यं स ईश्वरः स च पुरुषविशेष इति।

— समाधिपाद २४

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पांच क्लेश कहलाते हैं और शरीर और मन की जिन क्रियाओं में अच्छे-बुरे अर्थात् पुण्यापुण्य के सम्बन्ध जुड़े होते हैं वे सब कर्म कहलाते हैं और उनके फल को विपाक कहा जाता है और उनके फल को विपाक कहा जाता है और उन कर्म फलों के अन्दर कर्मफल के अनुसार वासना रहा करती है। यह जन्म-जन्मान्तर जनित कर्म समूह जिसमें जमा रहा करता है, उसको कर्माशय कहते हैं। ये सब कर्म और कर्माशय मन में रहते हुए पुरुष में कहे जाते हैं। व्यवहार में वह पुरुष ही इन कर्मफलों का उपभोक्ता है, ऐसा कहा जाता है। जैसे उदाहरण के तौर पर जहां कहीं भी लड़ाई होती है, जय और पराजय तो यथार्थ में सैनिकों की हुआ करती है, किन्तु फिर भी वह जय और पराजय उनके मालिक राजा की जानी जाया करती है। इस ही बात के अनुसार इन क्लेश, कर्म और विपाक आदि के भोगों से जो बिल्कुल अपरामृष्ट है, उसी का नाम ईश्वर है और वह ईश्वर विशेष पुरुष है अर्थात् पुरुषोत्तम है। यहां पर व्यास-भाष्य में कोई साधक प्रश्न करता है कि इस प्रकार के क्लेश, कर्म, विपाकादि से बिल्कुल विमुक्त बहुत से कैवली लोग हैं क्या उनको ईश्वर कहा जा सकता है? उसका उत्तर भाष्यकार इस प्रकार से देते हैं कि भाई वे लोग तो तीन बन्धनों को काटकर कैवली भाव को प्राप्त हुए हैं और ईश्वर के साथ तो इन तीन बन्धनों का सम्बन्ध न कभी पहले था और न ही कभी आगे होगा। जैसे मुक्त पुरुषों की मुक्ति से पहले वृद्धावस्था थी। इस प्रकार से ईश्वर कभी बद्ध कोटि में नहीं आया, और इसी प्रकार से जैसे प्रकृतिलीन होकर बाद में बन्धन कोटि की सम्भावना की जाती है, इस प्रकार से ईश्वर की कभी भी नहीं होगी। वह तो सदा ही ईश्वर है।

यहां पर एक और प्रश्न पैदा होता है और वह यह है कि प्रकृष्टिसत्त्वोपादानादिक, ईश्वर का जो शाश्वतिक उत्कर्ष है वह किसी निमित्त से है या बिना ही निमित्त के है। उसका उत्तर देते हुए भगवान व्यासदेव समझाते हैं कि उसका निमित्त कारण केवलमात्र शास्त्र है। उसके बाद प्रश्नकर्ता फिर दुबारा कहता है कि फिर शास्त्र का क्या कारण है उसका उत्तर देते हैं कि उसका निमित्त प्रकृष्ट सत्त्व ही है। इन शास्त्रोत्कर्ष और ईश्वर सत्ता के परस्पर वर्त्तमान रहने में अनादिकालीन सम्बन्ध है। क्योंकि वह ईश्वर इसी कारण से सदा ही मुक्त है और सदा ही ईश्वर है। उस ईश्वर का ऐश्वर्य साम्यातिशय से बिल्कुल विर्निमुक्त है। अर्थात् उस ईश्वर का ऐश्वर्य किसी दूसरे के ऐश्वर्य से दबाया नहीं जा सकता। जिसके ऊपर किसी का भी ऐश्वर्य न हो वही ईश्वर कहलाता है। अर्थात् जहां ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है वही ईश्वर है। उदाहरण देकर के श्री व्यासदेव जी इस प्रकार से समझाते हैं कि उस ईश्वर की शक्ति के समान किसी दूसरे की शक्ति नहीं हैं। जैसे एक ही वस्तु को कोई कहता है कि यह वस्तु नई बनी रहे और दूसरा कहता है कि नहीं यह पुरानी ही रहनी चाहिए। एक ही वस्तु के विषय में दोनों की भिन्न-भिन्न कामना होने से क्योंकि उन दोनों की कामना एक दूसरे के विरुद्ध हैं, इसलिये एक की कामना गिर ही जायेगी। इसलिये जिसकी शक्ति सबसे बड़ी है अर्थात् जिसके ऊपर किसी दूसरे की शक्ति का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ सकता वही ईश्वर है और वह ईश्वर सदा ही मुक्त है और पुरुष विशेष है यही ईश्वर सत्ता की विशेषता है।

प्रश्न : हे गुरुदेव आपने ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या मुझे भली प्रकार से समझा दी है क्या और भी कहीं इस प्रकार का वर्णन मिलता है?

उत्तर : हां पुत्र! इस प्रकार का वर्णन बहुत जगह है। और देखो अपनी श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान श्रीकृष्णचद्र ने इन्हीं भावों को स्वयं स्वीकार किया है। स्वयं अपने स्वरूप को समझाया है- और अपनी पुरुषोत्तमता को स्पष्टीकरण के साथ समझाया है। पढो श्रीकृष्ण चन्द्र गीता में किस प्रकार अपने स्वरूप को समझा रहे हैं–

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

(गीता १५/१६-१७-१८)

अर्थात् अर्जुन को समझाते हुए भगवान श्रीकृष्ण अपने मुखारविन्द से यह बतला रहे हैं कि हे अर्जुन संसार में दो पुरुष प्रख्यात हैं। और उनका वर्णन क्षर और अक्षर के रूप में किया गया है। ये पांचों महाभूत क्षर कहलाते हैं और अक्षर कूटस्थ जीवात्मा का नाम है। किन्तु इन दोनों से विशिष्ट उत्तम पुरुष और है जिसका नाम परमात्मा है, और जिसकी सत्ता सर्वत्र व्यापक है। वह परमात्मा ही सारे संसार का पालन-पोषण करने वाला है। इसलिये हे अर्जुन मैं क्षर और अक्षर दोनों से अतीत हूँ। इसी कारण से लोक और वेद में मुझे पुरुषोत्तम कहा गया है।

प्रश्न : हे गुरुदेव! आपकी पूर्ण कृपापूर्वक अखिल लोक प्रतिपालक भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों को सुन और योग सिद्धान्तों के पूर्ण प्रवक्ता भगवान पतञ्जलिदेव के शब्दों में ईश्वर शब्द की व्याख्या को भली प्रकार से समझ लिया है। अब आप कृपा करके गुरदेव के स्वरूप को समझा और दीजिये? ताकि मैं ईश्वर और गुरुदेव के अभिन्न स्वरूप को समझ कर उनके चरणों में आत्म-समर्पण कर अपने आपकी उत्कर्ष की ओर ले जा सकूँ।

उत्तर : हे पुत्र! गुरु गीता में अन्धकार निरोधन शक्ति जिस सत्ता में मौजूद है उसको गुरु बताया है—

गु शब्दस्त्वन्धकारोस्ति रु शब्दस्तन्निरोधकः।
अंधकार निरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात् गु नाम अन्धकार का है और रु शब्द अन्धकार निरोधक कहा गया है इसलिये जो सत्ता अन्धकार का निरोध करने वाली है उसी का नाम गुरु है। और योग दर्शन में ईश्वर के स्वरूप की अभिव्यक्ति तो तुमने पढ़ ही ली है उसी सर्व-व्यापक परमात्मा को गुरुओं का भी गुरु बतलाया है। पढो योग दर्शन में भगवान पतञ्जलिदेव का कथन जो उन्होंने सत्गुरु सत्ता को समझाने के लिये बतलाया है।

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

(समाधिपाद २६)

अर्थात् वह परमात्मा सृष्टि के प्रारम्भ में होने वाले जितने गुरु हैं वह त्रिगुणातीत, निराकार, निरञ्जन, प्रणवाभिवाच्य पूर्व गुरुओं का भी गुरु है। क्योंकि वह परात्पर है उसके आदि अन्त का कोई पता नहीं लगा सका, वह निर्गुण निराकार व्यापक सत्ता है, जिसके लिये सब वेद पुराण शास्त्र नेति-नेति कह करके अपनी पराजय मान चुके हैं।

पूर्वे हि गुरुवः कालेनावच्छेद्यन्ते, यत्रावच्छेदार्थेन कालो नोपावर्त्तते स एष पूर्वेषामपि गुरुः, यथाऽस्य सर्गस्यादौ प्रकर्षगत्या सिद्धस्तथाऽतिक्रान्तसर्गादिष्वपि प्रत्येतव्यः ।।26।।

सृष्टि के आदि में होने वाले सब गुरु हिरण्यगर्भ आदि सभी गुरु काल की अवधि वाले हैं और वह नित्य चेतन परमात्मा सदा नित्य सिद्ध, नित्यमुक्त अनादि हैं। वह अब भी कालावधि से परे है और पहले भी काल की अवधि से परे था और आगे भी कालावधि से परे ही रहेगा। अतः वह नित्य सिद्ध परमेश्वर सदा ही गुरुओं का भी गुरु है। जो लोग उसके सद्गुरु स्वरूप को समझ करके उसकी आराधना करते हैं उनको सकल अर्थ विद्यायें प्रकाशित होकर सर्वार्थ लाभ हो जाया करती हैं।

— क्रमशः

साधकों के प्रश्न और उनके उत्तर

(पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के सौजन्य से)

आश्रम के प्रशान्त वातावरण में योगाचार्य और उनके शिष्य-समुदाय के यथा स्थान बैठ जाने पर एक जिज्ञासु साधक ने विनम्रता से खड़े होकर निवेदन किया :—

प्रश्न : हे गुरुदेव आपके मुखारविन्द से मैंने परमदेव ईश्वर एवं सद्गुरु स्वरूप का व्याख्यान सुना। अब कृपा करके मुझे यह बतला दीजिये कि मैं उसकी आराधना किस प्रकार करूँ? और 'प्रणिधान' शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर : आचार्य ने उत्तर दिया— हे पुत्र 'प्रणिधान' शब्द का अर्थात् ईश्वर-प्रणिधान की विवेचना करते हुए भगवान व्यासदेव ने लिखा है—

ईश्वरप्रणिधानं=सर्व क्रियाणां परम गुरावर्पणं तत्फल-संन्यासो वा।।1।।

अर्थात् उस परम गुरु ईश्वर को सर्व कर्मार्पण को प्रणिधान कहते हैं, अथवा उन कर्मों के फलों को त्याग देने का नाम भी प्रणिधान कहलाता है। भगवान आनन्दकन्द श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए आत्म-समर्पणकारी भावों का उपदेश इस प्रकार किया है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व पदर्पणम्।।

— गीता ९/२७

अर्थात् हे अर्जुन जो कुछ तू करता है, या जो कुछ खाता है, या हवन यज्ञादि करता है और दान-पुण्यादि करता है, एवं इसके अतिरिक्त जो तपस्या वगैरा करता है वह सब मेरे लिये कर। इसी का नाम ईश्वर-प्रणिधान है। और यह ईश्वर-प्रणिधान ही भगवान पतञ्जलिदेव के बतलाये पांच नियमों में पिछला नियम है।

शिष्य :— हे गुरुदेव कृपाकर यह बतलाइये कि उस परम गुरु ईश्वर को आत्म-समर्पण किस प्रकार से होता है? ईश्वर को आत्म समर्पण करने के लिये मैं किन साधनों का अवलम्बन लूँ?

आचार्य :— हे पुत्र देखो! योगदर्शन के साधनपाद के प्रारंभ में भगवान पतञ्जलिदेव ने क्रियायोग का उपदेश लिया है और उन्होंने क्रियायोग की साधना के लिये तीन मुख्य साधन लिखे हैं। उनमें अन्तिम साधना ईश्वर प्रणिधान की ही है। वह सूत्र इस प्रकार से है-

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।

अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान यह क्रियायोग की साधना है। श्री व्यासदेवजी महाराज ने तप और स्वाध्याय का अर्थ निम्नांकित पंक्तियों में इस प्रकार लिखा है—

नातपस्विनो योगः सिद्धयति, अनादिकर्मक्लेश-वासनाचित्रा प्रत्युप स्थित विषयजाला चाशुद्धि-र्नान्तरेण तपः सभेदमापद्यत इति तपस उपादान, तच्च चित्तप्रसादनम् बाधमानमनेनासेव्यमिति मन्यते, स्वा-ध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपः मोक्षशास्त्राध्यायानं वा।।9।।

अर्थात् अनादि-काल से वासनाओं से घिरा हुआ चित्त बिना तप के शुद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये तप को ग्रहण किया गया है। क्योंकि बिना तप के योग सिद्ध नहीं होता और वह तप भी दुःखद तप नहीं करना चाहिये, जिसमें चित्त दुःख को प्राप्त न हो ऐसा ही तप करना चाहिये। योगियों के लिये इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना, पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना अथवा प्राणायाम आदि करना तप कहा गया है। आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र भगवान ने तप का वर्णन निम्नांकित श्लोकों में किया गया है जिसमें चित्त को पीड़ा देने वाली कोई बात ही नहीं—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शरीरं तप उच्यते।।
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङमयं तप उच्यते।।
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।

— गीता १७/१४-१५-१६

अर्थात् देवता, द्विज और बुद्धिमान लोगों का पूजन अर्थात् इन लोगों का सम्मान करना और शुद्धि रखना सभी के प्रति

विनम्र भाव मात्र के प्रति अहिंसा के भाव रखना, यह शारीरिक तप कहलाता है। किसी को कड़वी वाणी न बोलना, सत्य और प्यारा हितकारी वचन कहना, निरन्तर स्वाध्याय का अभ्यास करना, यह वाणी का तप है। मनकी प्रसन्नता सौम्यत्व मौन धारण करना और अपने आप पर कन्ट्रोल करना, इसके अतिरिक्त अन्तःकरण की शुद्धि यह मानस तप कहलाता है। इन तीन प्रकार के तपों में ब्रह्मचर्यव्रत आ गया और स्वाध्याय आ गया, आत्म-विनिग्रह आ गया। जो मनुष्य इस प्रकार के व्रतों का पालन करता है वह अवश्य ही अपने अन्तःकरण को शुद्ध बना लिया करता है। शुद्धान्तःकरण की यह पहचान है कि उसके मन से रजोगुण और तमोगुण के भाव बिल्कुल ही निकल जायें। अर्थात् उसके मन से रजोगुण, तमोगुण प्रवृत्तियों का नाश होता है केवलमात्र दया, धर्म और प्रेम का उदय मन में हो जाये तो समझ लेना चाहिये कि अन्तःकरण अब रज और तम से खाली है। शुद्ध सतोगुण का उदय हो चुका है। जिसके हृदय में शुद्ध सतोगुण का उदय हो जाया करता है उसी के मन में आत्मसमर्पण की भावना भी जगती है। इसी प्रकार से जो व्यक्ति स्वाध्यायशील हैं अर्थात् निरन्तर अपने इष्ट के गुरु प्रदत्त मन्त्र का जाप करता रहता हे एवं मुक्तिदाता शास्त्र, उपनिषद्, श्रीमद्भगवद् गीता एवं स्तोत्रों का पाठ करता रहता है उसके मन में भी कामना रहित विशुद्ध-प्रेम का उदय हो जाया करता है। जिसके कारण वह साधक परम गुरु ईश्वर को अपना तन, मन अर्पण कर देता है। उसका हर क्रिया-कलाप निष्काम कर्तव्यमात्र के लिये हुआ करता है। जैसे भारतवर्ष के इतिहास में प्रह्लाद, ध्रुव, मीराबाई एवं नरसीमहता के उदारण मिलते हैं। जिसके मन में विशुद्ध ज्ञान का उदय हो जाता है और पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण की भावना उदय हो जाता है वह सोचता है कि मैं जल्दी से जल्दी अपने प्रयत्न अपने इष्टदेव के लिए किसी भी प्रकार अपने तन, मन को खो डालूँ।

प्रश्न : ईश्वर को आत्म-समर्पण करने से अर्थात् ईश्वर प्रणिधान का परिणाम क्या निकलता है, कृपा करके इसका उपदेश और कर दीजिये?

उत्तर : हे पुत्र! सुनो योगदर्शन में भगवान पतञ्जलिदेव ने ईश्वर प्रणिधान का फल समाधि सिद्धि बतलाया है।

प्रश्न : हे गुरुदेव वह किस प्रकार से बतलाया है और समाधि-सिद्धि से साधक को क्या लाभ हो जाता है, कृपा करके बतलाइये?

उत्तर : हे पुत्र! योगदर्शन में भिन्न-भिन्न दो स्थानों पर ईश्वर प्रणिधान के फल का निरूपण किया गया है।

१. योगदर्शन समाधिपाद के २३ वें सूत्र में और २— साधन-पाद के ४५ वें सूत्र में समाधि-सिद्धि का वर्णन है। और वह इस प्रकार से है— जहां पर भगवान पतञ्जलिदेव ने समाधि प्राप्ति के अन्य-अन्य उपायों का वर्णन किया वहां पर किसी ने इस प्रकार प्रश्न किया कि—

किमेतस्मादेवासन्नतमः समाधिभवत्य थास्य लाभे भवत्यन्योऽपि कश्चिदुपायो न वेति-

अर्थात् क्या उपरोक्त जो उपाय बतलाये हैं उनसे भी किसी सर्व उपाय से समाधि हो सकती है और यदि हो सकती है तो उसका क्या उपाय है, इसके उत्तर में भगवान पतञ्जलिदेव ने बतलाया है कि—

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।।23।।

अर्थात् ईश्वर को आत्म-निवेदन करने से भी समाधि हो सकती है। इस सूत्र पर पढ़िये व्यास-भाष्य की निम्नांकित पंक्तियाँ—

प्रणिधानाद्=भक्ति विशेषाद् आवर्जित ईश्वरस्त-मनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण तदभिध्यानादपि योगिन आसन्नतमः समाधिलाभः फलं च भवतीति।।23।।

अर्थात् भक्ति विशेष से सामने लाया हुआ ईश्वर उस साधक पर संकल्प-मात्र से उस पर अनुग्रह करता है कि इसकी यह प्यारी वस्तु समाधि इसको प्राप्त हो जाये। इसके परिणाम स्वरूप उस साधक को बिना ही किसी प्रयास के समाधि होने लगती है।

प्रश्न : हे गुरुदेव और दूसरी जगह साधन पाद में आपने बतलाया है कि समर्पण से भी समाधि-लाभ होता है, कृपा करके बतलाइये?

उत्तर : हे पुत्र! वह वर्णन इस प्रकार है-

समाधिसिद्धिरीश्वर-प्रणिधानात्।।45।।

अर्थात् ईश्वर को आत्म-समर्पण करने से समाधि-सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इस पर श्री व्यासदेव जी की पंक्तियां इस प्रकार हैं—

ईश्वरार्पित सर्वभावस्य समाधिसिद्धिःयया सर्वमीप्सि-तमवितथं जानाति देशान्तरे, देहान्तरे, कालान्तरे च ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानातीति।।45।।

अर्थात् ईश्वर को सब प्रकार से सब भावों से अपने आपको अर्पित करने के बाद समाधि सिद्धि तो हो ही जाती है उसके साथ-साथ उसको वैसी ही बुद्धि आ जाती है। बिना ही किसी विघ्न के एव ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा यथार्थता का ज्ञाता बन जाता है चाहे किसी भी देश देशान्तर, कालान्तर का विषय हो उसे भी योगी की बुद्धि जान लिया करती है।

प्रश्न : हे गुरुदेव क्या भारतवर्ष में या भारत के पुराने इतिहास में कोई इस प्रकार के प्रमाण मिलते हैं जिनमें भूत-भविष्य का ज्ञातित्व सिद्ध होता हो?

उत्तर : हे पुत्र! देखो- हमारा प्राचीन इतिहास तो इस प्रकार के प्रमाणों में पूर्णरूपेण परिपूरित है, पुराणों में पूरा भविष्य पुराण इस बात का साक्षी है, उसमें लिखा है कि- भविष्य में क्या होने वाला है। भविष्य पुराण में यह स्पष्ट उल्लेख है कि-

निर्बीजा पृथ्वी निरौषधीरसा नीचा महत्वं गताः।
भार्या भर्तृरि विरोधनी पररताः पुत्रः पितुर्दूषक।।

अर्थात् पृथ्वी निर्बीज हो जायेगी, नीचे लोग बड़े बन जायेंगे, स्त्रियां अपने पतियों में प्रेम न कर दूसरे मनुष्यों में प्रेम करेंगी, पुत्र अपने पिताओं से द्वेष करेंगे, आदि सब बातें जो हमारे ऋषियों ने पहले से ही लिखकर रख दी हैं वे आजकल सब घटित होती जा रही हैं। इसी प्रकार से महामुनि आटव्य और महामुनि जैगीषव्य आदि के उदारहण हैं। जिन्होंने दस महासर्गों में होने वाले अपने सभी जन्मों का इतिहास कहकर बतला दिया यह उनके अतीत काल के ज्ञान का बहुत ही उत्कृष्ट प्रमाण था। जिसको पढ़कर सभी लोग यह जान सकते हैं कि हमारे ऋषि-मुनि कितने दूरदर्शी तथा भूत-भविष्य के ज्ञाता थे।

प्रश्न : हे गुरुदेव! क्या अपने गुरु भाई-बहनों में आजकल के समय में भी कोई इस प्रकार के योगाभ्यासी हुए हैं जिनको समाधि बल से दूर-देश का ज्ञान हुआ हो? और उन्होंने उस बात को पहले से बतला दिया हो?

उत्तर : हां इस प्रकार के हमारे बहुत अधिक सत्संगी बच्चे हैं जिसको भूत-भविष्य का काफी अच्छा ज्ञान हुआ। प्रथम तो तुम हमारे गुरु-भाइयों में श्री मुलखराज जी के जीवन-चरित्र को पढ़ लो। हमारी लिखी एक पुस्तक है- ''**ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के ध्यानानुभव**' उसको पढ़ लो। उसके पढ़ने से तुम्हें यह ज्ञान पूर्णरूप से हो जायेगा कि ब्र. गोपालानन्द जी भूत और भविष्य के ज्ञाता थे या नहीं! इसके अतिरिक्त एक घटना तुम्हें और सुनाते हैं जो बिल्कुल इन सभी बातों से सम्बन्ध रखने वाली है। श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के चरणारविन्द में टहलसिंह नाम के एक सिक्ख निवास किया करते थे। श्री आनन्दकन्द प्रभुजी ने उन पर बहुत बड़ा अनुग्रह किया था, जिसके फलस्वरूप उनको ध्यानानुभव हुआ करता था। निम्नांकित घटना बिल्कुल हमारे सामने घटित हुई थी। टहलसिंह ने एक दिन शाम के समय अपने ध्यान-समाधि में देखकर लाहौर से आने वाले एक व्यक्ति के बाबत बतलाया कि वह ऋषिकेश में प्रभुजी के चरण-कमलों में आने का दृढ़ विचार कर रहा है। थोड़ी देर के बाद उसने फिर बतलाया है कि वह व्यक्ति लाहौर रेलवे स्टेशन वाली पौने दस बजे की लाहौर से चलने वाली ट्रेन से चल पड़ा है। इस प्रकार प्रातःकाल होने तक अब यह व्यक्ति कहां आ गया है गाड़ी किस स्टेशन पर है यह सब कुछ बतलाता रहा और दूसरे दिन प्रातःकाल ही हम लोगों के साथ श्री प्रभुजी के पास टहलसिंह आकर बैठ गया और उसने बतलाया कि वह व्यक्ति ऋषिकेश रेलवे स्टेशन पर गाड़ी से उतर चुका है और १५-२० मिनट में वह यहां आश्रम आ जायेगा। उसने काली ऊन का कोट व सिर पर ऊन की वैसी ही टोपी भी लगाई हुई है। जिस समय टहलसिंह यह सब बातें बतला रहे थे तो हम सब के देखते ही देखते वह व्यक्ति आश्रम में आ गया। और जब हम लोगों ने उससे पूछा कि वह लाहौर से कितने बजे चला तो उसने सत्य-सत्य सब बातें बतला दी कि कल शाम को ५ बजे मेरे मन में इस प्रकार के विचार आये थे और रात के पौने दस बजे में लाहौर स्टेशन से गाड़ी में सवार हुआ और प्रातःकाल यहां हरिद्वार पहुँच कर गाड़ी से उतर कर मैं ऋषिकेश आ गया हूँ।

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के जमाने में तो अनेकानेक घटनायें होती रहती थीं। ये सब प्रकार की अनुभूतियां परम गुरु ईश्वर को आत्म-समर्पण करने पर अवश्य-अवश्य घटित हुआ करती हैं।

प्रश्न : हे गुरुदेव आपने श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी की उनके अपने जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के लिए संकेत किया और उसके बाद श्री आनन्दकन्द प्रभुजी की करुणा कृपापूर्वक लाहौर से आने वाले जिस व्यक्ति का उदाहरण दिया, वह तो बिल्कुल सत्य है किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य साधकों के विषय में भी परिचय कराइये जिन लोगों को भूत-भविष्य की यथार्थानुभूति हुई हो।

उत्तर : हे पुत्र, देखो ऐसी कोई इनी-गिनी एक दो घटनायें तो हैं नहीं इस प्रकार की घटनायें तो योगाभ्यासी साधकों के अन्दर अनेकानेक घटित होती ही रहती हैं।

प्रश्न : हे गुरुदेव यह तो सत्य है कि ऐसी घटनायें होती रहती हैं किन्तु मेरे मन के संतोष के लिये आप कृपा करके उदाहरण के लिये एक या दो चरित्र तो मुझे बतला ही दीजिये ताकि मुझे अपने गुरु-भाइयों के विषय में भी यह ज्ञान हो जाये कि ये लोग इस-इस प्रकार के हुए हैं?

उत्तर : हे पुत्र! क्या तुमने अपने योगाभ्यासी भाई संसारसिंह की घटना नहीं सुनी है। संसारसिंह एक बहुत ही तपस्वी एवं भूत-भविष्य का ज्ञाता हमारे उत्तम साधकों में हुआ है। संसारसिंह जम्मू-काश्मीर प्रान्तान्तर्गत किसी कस्बे कटरा आदि का रहने वाला था। और उसने बड़े ही प्रयत्न के साथ प्राणायाम की साधना की। तुमने योगदर्शन में पढ़ा ही होगा

कि भगवान पतञ्जलि जी महाराज ने प्राणायाम का फल— **'प्रकाशावर्ण क्षय'** लिखा है। संसारसिंह कटरा के पास परथल नामक ग्राम का रहने वाला था । उसको अपने जीवन-काल में उसकी योग-शक्ति की परिचायक एवं दूरदर्शिता की परिचायक अनेक घटनायें घटित हुयीं। एक बार संसारसिंह कटरा में किसी स्थान पर बैठा हुआ था उसकी आंखों के सामने एक व्यक्ति निकला उसको उसने देख लिया और देखकर उसके वर्तमान काल के कर्म-विपाक की ओर उसकी दृष्टि चली गई उसने उसके कर्म-विपाक पर विचार करके देखा कि यह एक डाक्टर है और अमृतसर का रहने वाला है। इसके दो बच्चे है। वह दोनों ही अपने तिमंजले मकान के ऊपर परस्पर लड़ रहे हैं और थोड़ी ही देर में लड़ते-लड़ते मकान से नीचे गिर गये। संसारसिंह ने अपने सत्संगियों के द्वारा उस डाक्टर को अपने पास बुला लिया और कहा कि भाई तुम डाक्टर हो, और अमृतसर के रहने वाले हो, तुम्हारे दो लड़के अभी-अभी तुम्हारे अपने मकान की तिमंजली छत से लड़ते-लड़ते नीचे गिर गये हैं, किन्तु जब वह लोग नीचे गिरने लगे तो उन पर हमारी दृष्टि पड़ गई है इसलिये उनको कोई दुखद आघात नहीं पहुँचा है। वे दोनों ही ठीक हैं। तुम्हारा छोटा भाई घर से तुम्हें फोन करने के लिये चल पड़ा है तुम यहां से सीधे टेलीफोन एक्सचेञ्ज पर जाकर टेलीफोन सुन लो। जब तक तुम एक्सचेञ्ज पहुँचोगे तब तक तुम्हारे ही सामने तुम्हारे भाई का टेलीफोन आ जायेगा। वह तुम्हें अवश्य ही जो घटना घटित हो गई है फोन पर ज्यों की त्यों बतला देगा। फोन पर सब समाचार पाकर तुम अपने घर अमृतसर लौट जाना और बच्चों की सँभाल कर लेना। संसारसिंह के कथनानुसार वह डाक्टर टेलीफोन एक्सचेञ्ज पर गया और वहां पहुँचते ही जैसा कि संसारसिंह ने बताया था उसको अपने भाई का फोन मिल गया। घटना ज्यों की त्यों सत्य निकली। इसी प्रकार की एक और घटना है।

संसारसिंह के गांव के पास कोई मुसलमान फकीर आया-जाया करते थे और वह गांव वालों के भले के लिये भविष्य की कई एक बातें बतला दिया करते थे। एक दिन उन्होंने आकर कहा कि भाई गांव वाली अपनी भेड़, बकरियों को अपने छा-छप्परों में रोक लो। वर्षा बहुत जोर की आ रही है और ओले बहुत जोरों से पड़ेंगे जिससे तुम्हार बहुत हानि हो जायेगी। उस मुसलमान पीर की वाणीं कभी भी असत्य नहीं होती थी किन्तु उस दिन कुछ भी नहीं हुआ। सभी लोगों को बहुत ही बड़ा आश्चर्य हुआ कि पीर साहब की वाणी कभी भी मिथ्या नहीं होती थी किन्तु आज यह क्या हो गया। आज तो इनकी वाणी बिल्कुल ही झूँठी हो गई है। उन सबने मिलकर उस मुसलमान पीर से प्रश्न किया कि पीर साहब आप तो कभी भी झूँठ नहीं बोलते थे आज यह क्या हुआ है आपकी वाणी भी असत्य हो गई। पीर ने उत्तर दिया कि भाई तुम मुझे यह बतलाओ कि वह जो यहां पर संसारसिंह नाम का एक राजपूतों का लड़का रहता था वह आजकल कहां है? और किस स्थिति में है यह सब काम उसी का है उसी ने ही वर्षा रोक दी है, और ओले नहीं पड़ने दिये हैं। तुम इस पहाड़ की खोह में जाकर देख लो। पहाड़ की खोह तीव्रतम वर्षा के वेग में आये हुए वर्षा के ओलों से पूरी-पूरी तरह भर गई है। संसारसिंह ने ही सारे बादलों को खींचकर बर्फ के टुकड़ों से पहाड़ की वह खोह पूरी तरह से भर दी है, और अपने गांव वालों को व अन्य कुटुम्बियों को बिल्कुल सुरक्षित बचा दिया है यह सब संसार सिंह की ही करामात है। गांव वालों ने पीर को उत्तर दिया कि पीर साहब संसारसिंह का तो पता ही नहीं है कि वह कहां है। संसारसिंह ३ वर्ष से बिल्कुल गायब है। पता नहीं कि वह जिन्दा भी है या नहीं। पीर साहब ने उत्तर दिया कि भाई नहीं संसारसिंह मौजूद है और वह इसी पहाड़ की किसी गुफा में रहता है। ये बातें जब इस प्रकार की हो ही रही थीं तो इतनी ही देर में संसारसिंह कहीं से निकल आया। संसारसिंह को आया देखकर सभी गांव वालों को बहुत ही बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज हय कैसे और कहां से निकल आया है। इसका तो हमें बिल्कुल भी कोई पता था ही नहीं, बल्कि हमें तो यह भी सन्देह था कि संसारसिंह कहीं जिन्दा भी है या नहीं। संसारसिंह को आया देखकर उस मुसलमान पीर ने हँसते हुए कहा कि-''कहो उस्ताद तुमने अपना गांव तो ज्यों का त्यों सुरक्षित बचा लिया और बर्फ के ओलों से पहाड़ की खोह भर डाली यह खूब उस्तादी की है। संसारसिंह हँसने लगा और हँसकर उसने कहा कि ऐसा हो हुआ करता है। ये कहते-कहते संसारसिंह पुन: उसी पहाड़ की ओर चला गया कि जिधर से वह आया था।

शिष्य :— हे गुरुदेव! आपने बहुत बड़ी कृपा की कि ईश्वर प्रणिधान के स्वरूप को बहुत ही भली प्रकार आपने हमें समझा दिया है। मेरे मन के सभी संशय नाश हो चुके हैं अब मैं आपकी आज्ञानुसार अपने अभ्यास को बढ़ाऊँगा और यह पूरा-पूरा प्रयत्न करूँगा कि मनसा, वाचा, कर्मणा उस आदि गुरु परमात्मा को आत्म-समर्पण करके आपको कृत-कृत्यता के उच्चतम लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जाऊँ। आपने मुझे ईश्वर-प्रणिधान ही क्या प्रत्युत यम-नियमों के पूरे-पूरे स्वरूप को भली प्रकार से वर्णनपूर्वक समझा दिया है। मैं पूर्णरूपेण यह समझ चुका हूँ कि अष्टांग-योग में यम-नियमों की साधना साधक के लिये बहुत ही आवश्यक व पालनीय है। यम-नियमों की पूरी-पूरी साधना करता हुआ मनुष्य पूर्णरूपेण ईश्वर-प्रणिधान को प्राप्त कर सकता है। हे गुरुदेव आपको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ आपके अनुग्रह को पाकर मैं कृतार्थ हो गया।